मानव भूगोल
(HUMAN GEOGRAPHY)

- मानव भूगोल, भूगोल की वह शाखा है, जिसमें मानव क्रियाओं और वातावरण, के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता हैं। इसमें मानवीय तत्वों (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि) के वितरण का अध्ययन किया जाता है।
- ''मानव भूगोल के दृश्य सर्वत्र वातावरण से सम्बन्धित होते हैं, जो स्वयं भौतिक दशाओं का एक योग होता है''- फ्रेडरिक रैटजेल (फ्रेडरिक रैटजेल (जर्मन भूगोलवेत्ता) को मानव भूगोल का जन्म दाता माना जाता है।
- ''मानव भूगोल अस्थायी पृथ्वी और चंचल मानव के पारस्परिक परिवर्तनशील सम्बन्धों का अध्ययन है।'' कु० ई० सी० सैम्पुल- पुस्तक ''इन्फ्लूएन्स ऑफ ज्यॉग्रफिक इनवायरनमेन्ट।''
- मानव भूगोल ''पृथ्वी और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों का एक नया विचार देता है, जिसमें पृथ्वी को नियन्त्रित करने वाले भौतिक नियमों तथा पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवों के पारस्परिक सम्बन्धों का अधिक संयुक्त ज्ञान समाविष्ट होता है।' विडाल डी ला ब्लॉश (फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता)
- ''मानव भूगोल में भौगोलिक वातावरण तथा मानवीय क्रियाओं और गुणों के पारस्परिक सम्बन्धों के वितरण और स्वरूप का अध्ययन होता है।'' ई० हार्टिंगटन (अमेरिकन भूगोलवेत्ता) पुस्तक ''प्रिंसिपल ऑफ ह्यूमन ज्योग्राफी''
- ''भूगोल प्रमुखत: मानव पारिस्थितिकी (Human Ecology) है, जिसमें पृथ्वी की पृष्ठ-भूमि से मानव समाजों का अध्ययन होता है'' व्हाइट और रैनर (अमेरिकन-भूगोलवेत्ता)

मानव भूगोल के अध्ययन क्षेत्र

1. जनसंख्या या जनता।
2. प्रदेश के प्राकृतिक संसाधन।
3. सांस्कृतिक वातावरण।
4. वातावरण समायोजन अर्थात् प्रादेशिक संगठन।
5. एक प्रदेश के दूसरे प्रदेशों से सम्बन्ध तथा स्थानिक संगठन।
6. कालिक अनुक्रम।

मानव भूगोल का विषय वस्तु
(Scope of Human Geography)

- प्राचीन भूगोलवेत्ताओं ने मानव भूगोल का सम्बन्ध मानव और वातावरण के आर्थिक क्रिया-कलापों तक बताया था वहीं आधुनिक विद्वानों ने इसके विषय वस्तु का एक विस्तृत क्षेत्र बताया है। इनके अनुसार मानव तथा वातावरण के अन्त: सम्बन्ध, मानव कार्यक्षमता, स्वास्थ्य, शिक्षा, जनसंख्या, कला, सरकार, राजनीति तथा धर्म को सम्मिलित किया है।
- विडाल डी ला ब्लाश महोदय ने जनसंख्या, सांस्कृतिक तत्वों और परिवहन (जिसमें मानव प्रजातियों और नगरों का भी वर्णन किया है) को मानव भूगोल के अध्ययन क्षेत्र माने हैं।
- अमेरिकन भूगोल वेत्ता फ्रिंच और ट्रिवार्था ने भौगोलिक अध्ययन क्षेत्र में-

  (i) प्राकृतिक तत्व- भूआकृति, जलवायु, जलमण्डल, मिट्टियाँ, खनिज पदार्थ, जीव-जन्तु तथा प्राकृतिक वनस्पतियों का अध्ययन।

  (ii) सांस्कृतिक तत्व- (Cultural Elements) अधिवास, कृषि, विनिर्माण उद्योग, परिवहन और व्यापार को समाहित किया है।

  (iii) जनसंख्या- (Population) में जनसंख्या वितरण, घनत्व वृद्धि-दर, स्त्री-पुरुष अनुपात, आयु वर्ग, ग्रामीण-नगरीय अनुपात आदि तत्वों को सम्मलित किया है।
- **हटिंगटन** महोदय ने मानव भूगोल के विषय वस्तु को तीन मुख्य भागों में बांटा है-
  1. प्राकृतिक वातावरण
  2. मानव वर्ग और
  3. मानव क्रियाएँ।
- **व्हाइट तथा रैनर** महोदय ने मानव भूगोल के अध्ययन में समायोजन (Adjustment) तथा सम्बन्ध (Relationship) के अध्ययन को ही मुख्य बतलाया है।

  इन्होंने समायोजन के तीन वर्ग बताए हैं-

  (a) आर्थिक समायोजन।

  (b) सामाजिक और सांस्कृतिक समायोजन।

  (c) राजनैतिक समायोजन।

  इन्होंने भौगोलिक सम्बन्ध (Relationship) को भी तीन प्रकार से रखा है-
  1. प्रयोग सम्बन्ध (Use Relationship)
  2. नियंत्रण सम्बन्ध (Control Relationship)
  3. विचार सम्बन्ध (Idea Relationship)

मानव भूगोल का इतिहास
(The History of Human Geography)

- ईसा से 6 शताब्दी पूर्व **अनेग्जीमेण्डर** (Anaximander) और **थेल्स** नामक यूनानी विद्वानों ने मानव समाजों का वर्णन किया था। **हिप्पोक्रेट्स** ने 420 ई० पूर्व अपनी पुस्तक में वायु, जल, स्थान का एशिया और यूरोप के मनुष्यों की उन्नति की तुलना की थी।
- **अरस्तु** ने अपनी पुस्तक में ठंडे मुल्कों के निवासियों को बहादुर किन्तु विचारों से कमजोर तथा एशिया के मनुष्यों को वीर बताया था।
- **हैरोडोटस (Father of History)** ने अपने मानव इतिहास में मानव भूगोल के कुछ पहलू पर प्रकाश डाला था तथा खानाबदोश जातियों तथा स्थायी कृषक-जातियों के जीवन पर वातावरण के प्रभाव को माना था।
- **स्ट्राबो (Strabo)** ने अपनी पुस्तकों में रोमन साम्राज्य के उत्थान में इटली के भौगोलिक वातावरण, जलवायु, समुद्र आदि कारणों को बताया था।
- **टॉलेमी (Ptolemy)** ने 150 ई० में अपनी पुस्तक ''ज्योग्राफिक सिण्टैक्सिस'' (Geographic Syntaxis) में भी मानव भूगोल के

2
भौगोलिक संकल्पनाएँ

नियतिवाद

- नियतिवाद के अनुसार पर्यावरण मानव क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करता है। (Lewthwaite, 1966) यह मानव व्यवहार में विभिन्नता को विभिन्न प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा स्पष्ट करता है।
- भूगोल की नियतिवादी विचारधारा के अनुसार, इतिहास, संस्कृति, जीवन-पद्धति, लोगों की सामाजिक-आर्थिक विकास की अवस्था को भौतिक पर्यावरण नियन्त्रित करता है।
- इनका विश्वास है कि मानव निष्क्रिय अभिकर्ता है तथा प्रकृति मानव-भाग्य की निर्माता है।
- रोमन, ग्रीक; यथा-हेरोडोटस, अरस्तू, स्ट्रेबो, इरेटोस्थनीज आदि; ने निर्धारित किया था कि उत्तरी यूरोपियन और ग्रीक के लोग एशियन और अफ्रीकन लोगों की अपेक्षा अच्छे पर्यावरणीय स्थान में रहते हैं।

  अरब—वर्षा और मानव व्यवहार—भ्रमणशील लोग बहादुर किन्तु चंचल होते हैं।

  काण्ट—इण्डोनेशिया तथा ईस्ट इण्डीज की अधखुली आँखें विषुवतरेखीय जलवायु का परिणाम है।
- मौसम के अनुसार पशुओं के रोग में परिवर्तन हो जाता है।
- **डार्विन** ने 1859 ई० में दिखाया कि संघर्ष अपने को जीवित बनाए रखने के लिए जरूरी है।
- **रेटजेल**—वैज्ञानिक निश्चयत्वाद के संस्थापक थे तथा उन्होंने **लेबेन्सरम** (Lebensrum) की संकल्पना विकसित की थी, जिसके अनुसार समान अवस्थिति समान जीवनचर्या को निश्चित करती है।
- **मिस सैम्पुल** रेटजेल की अनुयायी थी। उनके अनुसार, "मानव भू-पृष्ठ का उत्पाद है" सिद्धान्त के तहत मानव का स्वभाव स्थलाकृति द्वारा नियन्त्रित होता है। पूरे संसार में तीन तरह के लोग होते हैं—1. रूढ़िवादी-कट्टर 2. साहसी, स्वाभिमानी और 3. साधारण तथा ईमानदार।
- **हण्टिंग्टन** की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम 'Principle of Human Geography' 1945 ई० में प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने जलवायु पर अधिक जोर दिया तथा बताया कि जलवायु संस्कृति और सामाजिक प्रगति के द्वारा निर्धारित होती है।
- हण्टिंग्टन विश्वास करता था कि विशेष प्रकार की जलवायु सभ्यता की सर्वोच्च उपलब्धि सुनिश्चित करती है और जलवायु में भिन्नता संस्कृति और इतिहास में 'स्पन्दन' (Pulsations) उत्पन्न करती है जिसका उदाहरण है—प्राचीन सभ्यताओं (मिस्र, मेसोपोटामिया और सिन्धु घाटी) की जलवायु।
- हण्टिंग्टन ने जनजातियों के युद्धकला की संकल्पना तथा मध्य एशिया के भ्रमणशील प्रजाति (मंगोल, तुरान, तुर्कमेनिस्तानी, रूसी, बगदाद, चीन, भारत 13वीं शताब्दी) के भ्रमण के कारण स्पष्ट किये।
- आदर्श जलवायु की संकल्पना (20°C, विविध वनों) यथा—उत्तर-पश्चिमी यूरोप और उत्तर-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका।
- मृदा और वनस्पति जीवन-पद्धति के मुख्य निर्धारक हैं। मैक-कैरीसन, लोई बोयड और गिल्खिस, अफ्रीकन किकयु और मसाई का उदाहरण दिया।
- कार्ल मैकई-शैटलैण्ड (60°N) और प्रेयरी का उदाहरण दिया।
- गेडिस-तमिल और पंजाबी तथा मांसाहारी और गैर-मांसाहारी।

आलोचना

- यह व्यावहारिक तथा सत्यापित नहीं हो सकता।
- समान पर्यावरण, विभिन्न प्रजातियाँ समूह के लिए विभिन्न अर्थ रखते हैं।
- मानव निष्क्रिय नहीं है, वह एक सक्रिय अभिकर्ता है।
- कृषि भू-दृश्य पंजाब में बासमती की खेती मानव की अन्वेषक प्रवृत्ति का प्रमाण है।
- समान अवस्थितियाँ समान जीवन पद्धतियाँ उत्पन्न नहीं करती हैं।
- नियतिवादी उपागम अधिक साधारणीकरण करता है।

सम्भववाद

- सम्भववाद एक ऐसा दर्शन है, जो मानव को सक्रिय अभिकर्ता के रूप में देखता है।
- सम्भववादियों के अनुसार प्रकृति बड़ी संख्या में विकल्प प्रस्तुत करती है, जो तकनीकी ज्ञान की वृद्धि से सांस्कृतिक समूह के विकास को बढ़ावा देते हैं।
- इस विचारधारा को फैब्रे ने '**सम्भववाद**' कहा।
- "कोई आवश्यकता नहीं हैं, बल्कि प्रत्येक जगह सम्भावनाएँ हैं"—फैब्रे ("There is no necessities, but everywhere possibilities").
- प्रकृति सम्भावनाएँ उपलब्ध करवाती है तथा समाज उनका उपयोग करता है, प्रकृति की कुछ विशेष अवस्थाओं के अतिरिक्त; यथा—मरुस्थल, टुण्ड्रा और विषुवतीय प्रदेश।

- सम्भववादियों के अनुसार मानव व्यवहार में भिन्नता, समाज, संस्कृति व इतिहास को भौतिक पर्यावरण की सहायता से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है।
- मानव एक सक्रिय अभिकर्ता है और अपने पर्यावरण में परिवर्तन कर सकता है।
- लोग पूरी तरह से अपने पर्यावरण का उत्पाद नहीं हैं, बल्कि संस्कृति के उत्पाद हैं।
- विडाल के अनुसार जीवन पद्धति (Genre de Vie) सभ्यता का उत्पाद है।
- उन्होंने दो समूहों के लोगों के समान पर्यावरण में लोगों की संस्कृति तथा परम्पराओं के आधार पर उनकी जीवन पद्धति में विभिन्नता की व्याख्या करने का प्रयास किया।
- उदाहरण—याकूत अपने घोड़ों के साथ लीना नदी बेसिन के टुण्ड्रा की कठोर जलवायु में निवास करते हैं। यह प्रकृति की मानव पर विजय नहीं है।
- सम्भववादियों का मत था कि मानव केला और रबर को कृत्रिम विधियों के द्वारा टुण्ड्रा जैसी शीत जलवायु में भी उगा सकता है।
- सम्भववाद विचारधारा के जन्मदाता फ्रांस के प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता **ब्लाश** थे।

आलोचना

- तकनीकी प्रगति तथा आधुनिकता के बावजूद मनुष्य भौतिक पर्यावरण को नजर-अन्दाज नहीं कर सकता। सभी प्रदेशों में सम्भावनाओं का क्षेत्र सीमित है।
- मानव प्रकृति की योजना के विरुद्ध कभी नहीं जा सकता, यदि गया भी तो पारिस्थितिकीय और पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाएँगी। उदाहरणस्वरूप भारत में पंजाब और हरियाणा में चावल की खेती ने कई पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न कर दीं।
- अति मानव केन्द्रीयता।

नव-नियतिवाद

- ग्रिफिथ टेलर ने सन् 1920 में **नव-नियतिवाद** (रुको और जाओ नियतिवाद-Stop and Go Determism) की संकल्पना प्रस्तुत की थी।
- टेलर ने तर्क दिया था कि ऑस्ट्रेलिया में कृषि व्यवस्था की सीमितता भौतिक पर्यावरण द्वारा निर्धारित की गई है। वास्तव में यह भी वर्षा के वितरण पर निर्भर करती है।
- टेलर का यह भी विश्वास था कि किसी भी देश के लिए सर्वोत्तम आर्थिक कार्यक्रम भौतिक पर्यावरण द्वारा ही निर्धारित होता है।
- मानव किसी भी देश की प्रगति को तेज कर सकता है, धीमा कर सकता अथवा रोक सकता है, किन्तु प्रकृति की योजना के विरुद्ध नहीं जा सकता है।
- टेलर के अनुसार, मानव यातायात नियन्त्रक के समान है। 'रुको और जाओ' नियतिवाद का नारा है। टेलर का मानना था कि बुद्धिमान व्यक्ति प्रकृति की योजना का अनुसरण करते हैं।

आलोचना

- **जेम्स (1932)** के अनुसार, "हमारे विचार हमारे कार्यों को सुनिश्चित करते हैं और हमारे कार्य विश्व की प्राकृतिक प्रवृत्तियों को निश्चित करते हैं।"
- पर्यावरण में सुधार हमारे ज्ञान पर निर्भर करता है। उदाहरण—विभिन्न सांस्कृतिक अवस्थाओं में समुदाय में भिन्नता होती है। पर्वतों के दर्रों का घुड़सवार, ऑटोमोबाइल तथा वायुयान के लिए अलग-अलग अर्थ तथा महत्त्व का होता है।
- प्राचीन काल के भूगोलवेत्ता पूरी तरह से नियतिवादी थे, भौतिक पर्यावरण को अधिक भारण देते थे तथा मानव को वे निष्क्रिय अभिकर्ता मानते थे। जर्मन विशेषकर रेटजेल और उसके अनुयायियों ने इस दर्शन का समर्थन किया था।
- फ्रेंच विचारक फैब्रे तथा विडाल-डी-ला ब्लाश ने सम्भववादी दर्शन को विकसित किया था। उन्होंने जोर दिया था कि जीवन पद्धति (Genre de Vie) मानव तथा पर्यावरण दोनों ही के सम्बन्धों की मुख्य निर्धारक है।
- ये सभी विचारधाराएँ बीसवीं सदी के मध्य या द्वितीय विश्व-युद्ध के उपरान्त मानव तथा पर्यावरण के सम्बन्धों को पूरी तरह से वैज्ञानिक रूप से व्याख्यायित नहीं कर पाईं और बाद में दार्शनिक उपागम; यथा—प्रत्यक्षवाद, व्यवहारवाद, मानववाद; जैसी संकल्पनाओं को भूगोलवेत्ताओं ने ग्रहण किया था।

पर्यावरण कारकवाद पारिस्थितिकी

- पारिस्थितिकी मानव भूगोल का उपगमन है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य और पर्यावरण (प्रकृति व समाज) के बीच सम्बन्ध से है।
- पारिस्थितिकी पर्यावरणीय नियतिवाद का रूप है, जो औद्योगिक और उपयोगी समाज के वाद का परिणाम है।
- सैम्पुल के अनुसार—"मानवता (समाज) का निर्धारण प्रकृति द्वारा होता है और मनुष्य पर्यावरण (भू-तल) का उत्पाद है।"
- विडाल-डी-ला ब्लाश के अनुसार "मानवता (समाज) का प्रकृति (पर्यावरण) के साथ सामंजस्य रहता है।"
- "प्रकृति को परिवर्तित करने के रूप में मानवता हमारे विचार हमारी क्रियाओं को निर्धारित करते हैं और हमारी क्रियाएँ हमारे जीवन को निर्धारित करती हैं।"
- इनमें अन्तिम समकालीन परिस्थितिवाद के प्रभावशाली तत्त्व हैं और किसी खास भौगोलिक तन्त्र में तीनों एक-दूसरे से परस्पर मिल जाते हैं।
- वर्तमान में परिस्थितिवाद का राजनीतिकरण 'ग्रीन्स' के रूप में हुआ है। परिस्थितिवाद के घोषणा-पत्र के साथ ही कुछ राजनीतिक दलों का आविर्भाव हुआ है।
- जर्मनी में 1979 ई० में ग्रीन पार्टी की स्थापना हुई। यह परिस्थितिवाद की नई शक्ति का तार्किक कथन है।
- परिस्थितिवाद के समर्थकों का मुख्य उद्देश्य समाज, प्रकृति और मनुष्य व पर्यावरण के बीच सन्तुलन स्थापित करना है।
- सामाजिक और आर्थिक जटिलताओं के परिप्रेक्ष्य में आज समाज और प्रकृति के बीच सन्तुलन बनाए रखना बहुत मुश्किल है।

भूगोल में द्वैतवाद

क्रमबद्ध कनाम प्रादेशिक भूगोल :-

भौगोलिक अध्ययन में प्राचीनकाल से ही इन दोनों विधियों का प्रयोग होता रहा है। सर्वप्रथम वारेनियस ने क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक उपागमों में आधारभूत अंतर मानकर भौगोलिक अध्ययन की शुरुआत की। उसने 1650 में अपना भौगोलिक ग्रंथ General तथा Special नामक दो भागों में प्रकाशित किया उसने General के अंतर्गत क्रमबद्ध तथा Special के अंतर्गत प्रादेशिक विधि का प्रयोग किया

क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल में अंतर्सम्बंध :-

ये दोनों विधियाँ एक ही रथ के दो पहियों अथवा एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान हैं। ये दोनों विधियाँ एक दूसरे की विरोधी न होकर पूरक हैं, तथा एक दूसरे में इस प्रकार समाविष्ट हैं जिस प्रकार कपड़े की बुनाई में ताना बाना जिस प्रकार ताने बाने के पारस्परिक सहयोग से कपड़े का निर्माण होता है, इसी प्रकार दोनों विधियों से किये गये अध्ययन से किसी क्षेत्र का पूर्ण भौगोलिक ज्ञान प्राप्त होता है।

ये दोनों उपागम मात्र एक दूसरे से अंतर्सम्बंधित ही नहीं वरन वरन दोनों ही एक दूसरे में समाहित हैं। क्रमबद्ध भूगोल के अंतर्गत भूरचना, जलवायु मिट्टियां, कृषि, उद्योग, खनिज आदि का प्रकरण बद्ध अध्ययन किया जाता है तथा पृथ्वी तल के विभिन्न क्षेत्रों में उनका वितरण समझाया जाता है, इसी प्रकार प्रादेशिक भूगोल में पृथ्वी तल को छोटे-छोटे प्रदेशों में विभाजित कर उसके सभी तत्वों का प्रकरण बद्ध विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार क्रमबद्ध उपागम में प्रादेशिक भूगोल का तथा प्रादेशिक उपागम में क्रमबद्ध भूगोल का अध्ययन स्वतः ही हो जाता है। दोनों विधियाँ एक दूसरे से इस प्रकार समाविष्ट हैं कि एक विधि सदैव ही गौण रूप से दूसरी विधि में सम्मिलित रहती है।

अतः क्रमबद्ध भूगोल प्रादेशिक भूगोल रूपी वृक्ष का आधार एवं जड़ है तथा क्रमबद्ध भूगोल को प्रादेशिक भूगोल का सहारा न मिला तो यह विखंडित होकर अनेक भौतिक विज्ञानों में बँट जायेगा। इन दोनों में से किसी एक के बिना दूसरे का विकास संभव नहीं है।

भौतिक बनाम मानव भूगोल

20वीं शताब्दी में कुछ फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं द्वारा मानव भूगोल का अध्ययन प्रारंभ किया गया जिसके फलस्वरूप भूगोल का दो पक्षों में विभाजन हो गया (1) भौतिक भूगोल (2) मानव भूगोल

1. भौतिक और मानव भूगोल का द्वैत मिथ्या है :-

भूगोल का भौतिक व मानव भूगोल में विभाजन मिथ्या है। भूगोल पृथ्वी तल पर तथ्यों के क्षेत्रीय वितरण का अध्ययन करता है और उस अध्ययन में भौतिक तथा मानवीय दोनों ही तत्वों का समावेश रहता है। भूगोल एक संपर्क विज्ञान है जो प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के बीच सेतु का कार्य कर भौतिक और मानवीय तत्वों के मध्य संबंध स्थापित करता है। भूगोल में भौतिक और मानवीय दोनों पक्षों का अध्ययन एक दूसरे से शत प्रतिशत अलग नहीं किया जा सकता।

2. भूगोल का समग्र अध्ययन आवश्यक है :-

प्राकृतिक वातावरण का प्रत्येक तत्व परस्पर एक दूसरे पर आधारित है जैसे- मिट्टी का निर्माण अजैव तत्वों- पैतृक शैल, जलवायु तथा जैव तत्वों, वनस्पति

जीवाणु व मानवीय क्रियाओं जैसे कृषि, खाद का प्रयोग, भूसंरक्षण आदि की मिली जुली क्रियाओं के फलस्वरूप होता है जबकि मिट्टी का प्रभाव, भोजन आपूर्ति, उद्योग, बस्तियां, तथा सामाजिक सांस्कृतिक प्रतिरूप पर होता है। खनिजों का निर्माण तो केवल भूमि के अंदर की प्राकृतिक शक्तियों की प्रक्रियाओं द्वारा होता है परंतु खनिज संपदा का प्रयोग मानव द्वारा व मानव हित में होता है। खनिज पक्ष के अध्ययन में मानवीय पक्ष का अध्ययन भी शामिल है।

समुद्री अध्ययन में केवल ज्वार-भाटों, समुद्री लहरों का ही अध्ययन नहीं बल्कि मानवीय क्रियाओं जैसे मत्स्य उद्योग, नौपरिवहन आदि का भी अध्ययन होता है।

संक्षेप में मानव भूगोल के प्रत्येक उपविभाग में भौतिक भूगोल का अध्ययन गुँथा हुआ रहता है और भौतिक भूगोल के प्रत्येक अध्ययन में मानवीय छाप सम्मिलित रहती है। अतएव भूगोल में भौतिक और मानव भूगोल का द्वैत केवल अध्ययन की सुविधा और विशेषीकरण के लिए किया गया है।

व्यवहारवाद

व्यवहारवाद 20वीं सदी में भूगोल के व्यावहारिक पक्ष को उजागर करने वाला एक दृष्टिकोण है। सर्वप्रथम ब्रिटिश भूगोलविद् स्टाम्प ने 1946 में व्यावहारिक भूगोल शब्द का प्रयोग किया और भूगोल को व्यावहारिक भूगोल विज्ञान मानने पर जोर दिया। बाद में ब्रिटेन, फ्रांस, USA तथा अन्य देशों में व्यावहारिक भूगोल पर शोध कार्य सम्पन्न किये गये। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं ने विशेष योगदान दिया। स्टाम्प ने 1922 में ब्रिटेन का भूमि उपयोग सर्वे कराया। अमरीका में मानव व्यवहारवादी भूगोल को इस तरह परिभाषित किया गया – "व्यवहारवादी भूगोल अध्ययन की वह शाखा है जो मानव व्यवहार संबंधी मान्यताओं के आधार पर भौगोलिक सिद्धांतों के प्रतिपादन का प्रयास करती है।

व्यावहारिक भूगोल के अंतर्गत मानव तथा वातावरण की पारस्परिक अंतर्क्रियाओं से उत्पन्न हुई समस्याओं को समझने तथा उनका हल ढूंढने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें मुख्यतः भूमि उपयोग, संसाधन मूल्यांकन, मानव संसाधन नियोजन, उद्योगों के स्थानिक विश्लेषण, परिवहन तथा संचार, ग्रामीण तथा नगरीय बस्तियों के नियोजन आदि का अध्ययन किया जाता है। यह अपनी विश्लेषण तकनीक द्वारा मानव वातावरण की अन्तर्क्रियाओं से संबंधित समस्याओं जैसे भूमि की अनुकूलतम उपयोग की समस्या, भूसंरक्षण की समस्या, जनसंख्या के बढ़ते भार की समस्या, पिछड़े क्षेत्रों के विकास की समस्या व वातावरण प्रदूषण की समस्या का समाधान ढूंढने का भी प्रयास करते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक भूगोल का उद्देश्य भूतल पर किसी क्षेत्र में मानव वातावरण की अन्योन्य क्रियाओं को समझना, उनकी व्याख्या करना तथा मानव समाज के कल्याण हेतु एक सुनियोजित विकास की रणनीति बनाना है।

विश्व की प्रमुख जनजातियाँ

एस्किमो – अमेरिका के अलास्का से ग्रीनलैंड तक के टुंड्रा प्रदेशीय क्षेत्रों में रहने वाले एस्किमो मंगोलॉयड प्रजाति के हैं। इनका मुख्य व्यवसाय आखेट है। रेंडियर इनका पालतू पशु है। ये वालरस, श्वेत भालू, रेंडियर, सील मछली आदि का शिकार करते हैं। हारपून नामक अस्त्र व उमियाक नाव की मदद से ये ह्वेल तक का शिकार कर लेते है। इनका निवास गृह 'इग्लू' बर्फ के टुकड़ों से बना होता है।

बुशमैन – द. अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थल में निवास करने वाली यह जन-जाति अब लेसोथो, नैटाल और जिंबाव्वे में पाई जाती है। ये हब्शी प्रजाति के लोग हैं। इनकी आँखें चौड़ी व त्वचा काली होती है। बुशमैन का मुख्य व्यवसाय आखेट व जंगली वनस्पति संग्रह करना है। ये लोग सर्वभक्षी होते हैं।

मसाई – टांगानिका, केन्या व पूर्वी युगांडा के पठारी क्षेत्रों में ये घुमक्कड़ी पशुचारक के रूप में जीवन निर्वाह करते हैं। इनमें मेडिटेरियन और नीग्रोइड प्रजाति के मिश्रण की झलक दृष्टिगत होती है। ये लोग झोपड़ियों में रहते हैं जिन्हें 'क्रॉल' कहा जाता है। ये गाय को पवित्र मानते हैं। यहां के पुजारी लैबोन कहलाते हैं।

गोंड

- भारत की सबसे बड़ी जनजाति है मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, व उड़ीसा के दक्षिणी पश्चिमी भागों में भी यह निवास करते हैं।
- प्रावद्रविड़ प्रजाति के हैं, इनका रंग काला, नाक चौड़ी, काले मोटे होंठ और गोल सिर होते हैं।
- इनका मुख्य व्यवसाय कृषि है, अधिकांशत: स्थान्तरणीय कृषि अपनाते हैं। धान, कपास, कोंदो, ज्वार, गेंहूँ और चना इनकी मुख्य फसल है।

संथाल

- यह झारखण्ड की प्रमुख और भारत की एक महत्वपूर्ण जनजाति है। झारखण्ड के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और असम राज्यों में भी पाए जाते हैं।
- संथाल आस्ट्रेलायड और द्रविड़ प्रजाति के हैं।
- छोटा कद, रंग हल्का भूरा, नाक लम्बी, सीधे बाल, मुंह चौड़ा तथा पतले होंठ होते हैं।
- इनका मुख्य भोजन चावल है।
- यह मुण्डा भाषा बोलते हैं।
- **सकरात पर्व** (फरवरी) **सोहरद्दे पर्व** (अक्टूबर) **और बाह्य पर्व**

गौंण सांस्कृतिक परिमण्डल

1. दक्षिणी-पूर्वी एशियाई संस्कृति- यह एक संक्रामी संस्कृति है, जो ऐसे स्थान पर विकसित हुई है, जहां कई संस्कृतियां अन्तर्गुथित हैं।

- म्यामांर, वियतनाम एवं थाईलैण्ड में बौद्ध धर्म का प्रभाव है जबकि फिलीपीन्स में ईसाईयत, इंडोनेशियाई द्वीपों में भारतीयता, मलेशिया व इंडोनेशिया में इस्लाम का प्रभाव देखा जा सकता है।

2. मध्य अफ्रीकी संस्कृति- इसे नीग्रों संस्कृति के रूप में भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से उष्ण कटिबंधीय अफ्रीका शामिल है।

- अमेरिकी रेड इंडियन, लैटिन अमेरिकी जनजातियों, आस्ट्रेलियाई अबोरीजिनल तथा एशिया प्रशान्त की अनेक जनजातियों के मध्य इसी प्रकार की सांस्कृतिक अवस्था पाई जाती है।

जनसंख्या (THE POPULATION)

जनसंख्या वितरण (Population distribution)

- विश्व में जनसंख्या का वितरण असमान है। इसके लिए अनेक भौतिक या प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा जनांकिकीय कारक उत्तरदायी हैं।
- भौतिक कारकों में- जलवायु, स्थलाकृति, जल की उपलब्धता, मिट्टियां, खनिज पदार्थ, आदि प्रमुख हैं।
- सांस्कृतिक कारकों में- आर्थिक विकास, सामाजिक संस्थाओं तथा राजनीतिक संगठन महत्वपूर्ण है।
- जनांकिकीय कारकों में- जन्म एवं मृत्यु दरें तथा प्रवास प्रमुख हैं।
- सन् 2001 में विश्व की आबादी 6137 मिलियन थी। इसका लगभग 19.4% अधिक विकसित देशों में तथा 80.6% कम विकसित देशों में वितरित था।
- एशिया (3720 मिलियन) सर्वाधिक आबादी वाला महाद्वीप है, अफ्रीका (818 मिलियन), यूरोप (727 मिलियन), दक्षिणी अमेरिका (350 मिलियन), उत्तरी अमेरिका (316 मिलियन), तथा ओशीनिया (31 मिलियन) क्रमशः घटते हुए क्रम में आबाद महाद्वीप हैं।
- विश्व की जनसंख्या के वितरण का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका विषम वितरण है। विश्व की 90% से अधिक आबादी उत्तरी गोलार्द्ध में संकेन्द्रित है। ट्रिवार्था के मत में विश्व की आधी से अधिक आबादी 5% से भी कम भू भाग पर रहती है।
- जनसंख्या के वितरण का दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य उसका तटवर्ती भागों में संकेन्द्रित होना है। क्लार्क के मतानुसार विश्व की दो तिहाई जनसंख्या समुद्र तट से 500 किमी० भीतर तक संकेन्द्रित है।

जनसंख्या का महाद्वीपीय वितरण

(1) एशिया- एशिया की अधिकांश जनसंख्या नदी घाटियों व डेल्टाओं में संकेन्द्रित है।

- **चीन**- यहां विश्व की लगभग 21% (1273 मिलियन) जनसंख्या निवास करती है। यहां उत्तरी मैदान, यांग्त्सी डेल्टा, यांग्त्सी की मध्यवर्ती घाटी, जेचवान बेसिन, सीक्यिांन घाटी एवं डेल्टा, दक्षिणी-पूर्वी तट एवं दक्षिणी-पूर्वी मंचूरिया घने आबाद हैं। इसके विपरीत आन्तरिक मंगोलिया व सिक्यांग के विस्तृत क्षेत्र जनशून्य ही हैं।
- **भारत**- यहां विश्व की लगभग 17% (1033 मिलियन) जनसंख्या

निवास करती है। नदियों के मैदानों एवं डेल्टाओं में जनसंख्या का सर्वाधिक संकेन्द्रण मिलता है। पश्चिम बंगाल, केरल, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में अधिक जन घनत्व पाया जाता है। जबकि राजस्थान, गुजरात, जम्मू व कश्मीर तथा (असम को छोड़कर) पूर्वोत्तर राज्यों में कम जन घनत्व मिलता है।

- **पाकिस्तान**- इसकी जनसंख्या 145 मिलियन (विश्व का 2.4%) है। सिन्धु व सहायक नदियों के मैदान तथा सिन्धु डेल्टा घने बसे भाग हैं।
- **बांग्लादेश**- यहां 133 मिलियन जनसंख्या (विश्व का 2.2%) है। नदीय मैदान एवं डेल्टा सबसे घने आबाद हैं।
- **इन्डोनेशिया**- यहां 206 मिलियन आबादी (विश्व की 34%) मिलती है। देश की लगभग 70% आबादी जावा एवं मदुरा द्वीपों में संकेन्द्रित है।
- **जापान**- यहां 124 मिलियन आबादी (विश्व की 2%) मिलती है। सघन आबादी के प्रमुख क्षेत्र क्वान्टो मैदान, नागोया, किन्की प्रदेश, उत्तरी क्यूशु तथा कानाजावा प्रदेश हैं। अधिकांश आबादी संकरे समुद्र तटीय मैदानों में संकेन्द्रित है।

(2) यूरोप- यूरोप में 727 मिलियन जनसंख्या है जो विश्व की लगभग 12% है। अधिकांश जनसंख्या खनिज सम्पन्न क्षेत्रों तथा उर्वर नदी घटियों में संकेन्द्रित है।

- 40° उत्तरी अक्षांश के सहारे विस्तृत कोयला पेटी यूरोप की प्रसिद्ध औद्योगिक पेटी है जो यूरोप की जनसंख्या की धुरी कहलाती है।
- यह औद्योगिक पेटी पश्चिम में उत्तरी सागर व इंगलिश चैनल से लेकर पूर्व में यूक्रेन के नीपर के मैदान तक विस्तृत है। इसमें सघन जनसंख्या के तीन क्षेत्र हैं-

(i) ग्रेट ब्रिटेन से यूक्रेन तक
(ii) राइन बेसिन, तथा
(iii) इटली के उत्तरी तथा तटवर्ती मैदान

(3) उत्तरी अमेरिका- मध्य अमेरिका सहित उत्तरी अमेरिका की जनसंख्या 454 मिलियन है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या 284.4 मिलियन है, जिसका 85% भाग 100° पश्चिमी देशान्तर के पूर्व में संकेन्द्रित मिलता है।

- यहां सघन जनसंख्या के तीन क्षेत्र मिलते हैं-

(i) मेन राज्य से मेरीलैण्ड तक विस्तृत अटलांटिक तटीय क्षेत्र, जहां न्यूयार्क प्रमुख नगर है।
(ii) महान झील प्रदेश, तथा
(iii) प्रशान्त तटीय क्षेत्र एवं कैलीफोर्निया।

- मैक्सिको की जनसंख्या 99.6 मिलियन है। कैरीबियन क्षेत्र में क्यूबा 11.3 मिलियन, डोमिनियन रिपब्लिक 8.6 मिलियन तथा हैती 7 मिलियन उल्लेखनीय है।

(4) दक्षिणी अमेरिका- दक्षिणी अमेरिका की कुल जनसंख्या 350 मिलियन है। अधिकांश जनसंख्या तटीय क्षेत्रों में स्थित नगरों में संकेन्द्रित है। आन्तरिक क्षेत्र विरल आबाद है।

- ब्राजील सर्वाधिक जनसंकुल देश है, जिसकी जनसंख्या 171.8 मिलियन है। कोलम्बिया 43.1 मिलियन, अर्जेन्टाइना 37.5 मिलियन, पीरू 26.1 मिलियन तथा वेनेजुएला 24.6 मिलियन है।

(5) अफ्रीका- इस महाद्वीप में 818 मिलियन आबादी मिलती है। यह विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंकुल महाद्वीप है। यहां जनसंख्या का सर्वाधिक संकेन्द्रण नील नदी की घाटी व डेल्टा में हुआ है।

- मध्यम आबाद क्षेत्रों में-

(i) मोरक्को व अल्जीरिया के तटवर्ती क्षेत्र,

(ii) दक्षिणी अफ्रीका में केप प्रान्त एवं नेटाल,

(iii) नाइजीरिया, गिनी तट व घाना, तथा

(iv) अबीसीनिया उच्च प्रदेश व केन्या उच्च प्रदेश है।

✦ इसके विपरीत उत्तर में सहारा का विशाल मरुस्थल, दक्षिण-पश्चिम में कालाहारी व नामीब मरुस्थल तथा कांगों बेसिन के वर्षा वन अत्यन्त विरल आबाद प्रदेश हैं।

✦ नाइजीरिया (126.6 मिलियन) सर्वाधिक आबादी वाला देश है।

(6) ओशीनिया- ओशीनिया में 31 मिलियन जनसंख्या निवास करती है। आस्ट्रेलिया (19.4 मिलियन) तथा न्यूजीलैण्ड (3.1 मिलियन) अधिक आबाद देश है।

✦ आस्ट्रेलिया में अधिकांश जनसंख्या दक्षिणी-पूर्वी तटों पर संकेन्द्रित है। न्यूसाउथ वेल्स के दक्षिणी-पूर्वी भाग, विक्टोरिया तथा पर्थ की पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत घने आबाद क्षेत्र हैं। शेष महाद्वीप में विरल आबादी मिलती है।

सूत्र- कृषि घनत्व $= \dfrac{\text{कृषि में लगी जनसंख्या}}{\text{कृषि क्षेत्र}}$

✦ विश्व का औसत जन घनत्व 45.5 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० है। विश्व में जनसंख्या के घनत्व का प्रसार आस्ट्रेलिया में 2 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से मकाओ (चीन) में 21900 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० तक है।

✦ एशिया महाद्वीप का औसत जनघनत्व 117 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० मिलता है। यहां मकाओ (21900), सिंगापुर (6687), बहरीन (1038), मालदीव (963), बांग्लादेश (927), ताइवान (620), आदि अत्यधिक घने आबाद देश/प्रदेश हैं।

✦ मंगोलिया में विश्व का न्यूनतम (1 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी०) जनघनत्व पाया जाता है। कजाकस्तान (5), सऊदी अरब (10), ओमान (11), तुर्कमेनिस्तान (11), भूटान (19), लाओस (23), किर्गिस्तान (25), तथा यमन (34), भी विरल आबाद है।

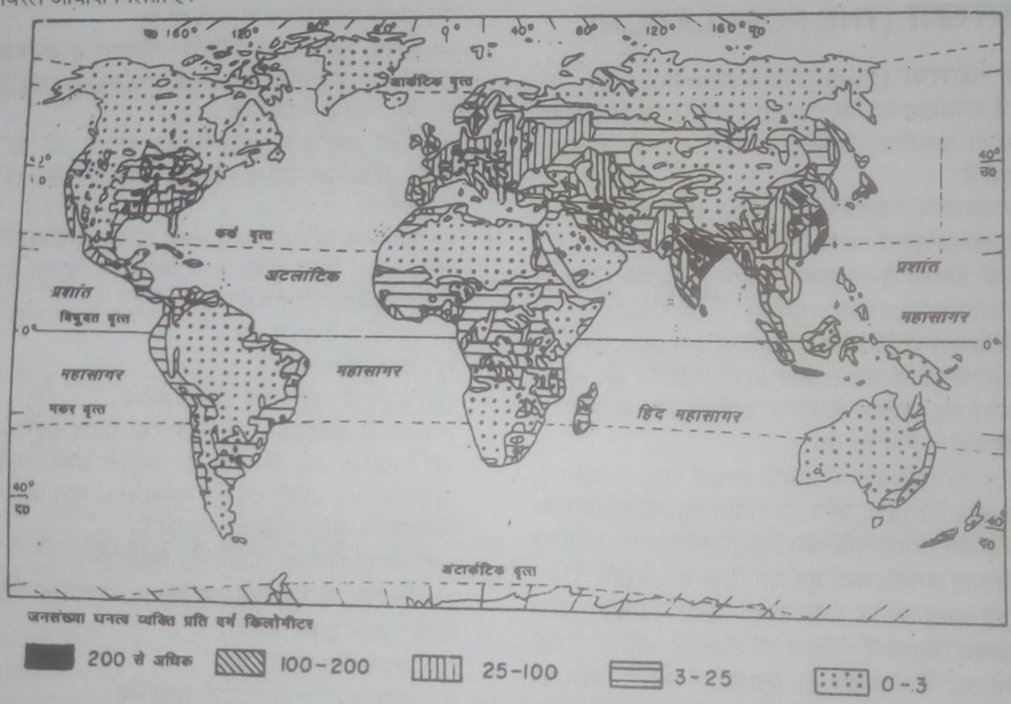

चित्र : जनसंख्या घनत्व

जनसंख्या का घनत्व (Density of Population)

✦ जनसंख्या घनत्व के प्रकार- यह तीन प्रकार का होता है-

(1) जनसंख्या का गणितीय या वास्तविक घनत्व (Arithmetic or Real Density)

सूत्र- गणितीय घनत्व $= \dfrac{\text{देश की कुल जनसंख्या}}{\text{देश का समस्त क्षेत्रफल}}$

(2) जनसंख्या का कायिक घनत्व (Physiological Density)

सूत्र- कायिक घनत्व $= \dfrac{\text{देश की कुल जनसंख्या}}{\text{देश की कुल कृषि योग्य भूमि}}$

(3) जनसंख्या का कृषि घनत्व (Agriculture Density)

✦ यूरोप में महाद्वीपीय स्तर पर 32 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० का जनघनत्व है। प्रादेशिक स्तर पर नीदरलैण्ड्स (393) सर्वाधिक घना आबाद देश है। बेल्जियम (337), यूनाइटेड किंगडम (245), जर्मनी (230), इटली (192), डेनमार्क (124), पोलैण्ड (120), फ्रांस (107) आदि क्रमश: सघन आबाद है।

✦ यूरोप के द्वीपीय देश मोनाको में 1753 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० का जनघनत्व पाया जाता है। जबकि आइसलैण्ड (3), रूसी फेडरेशन (9), नार्वे (14), फिनलैण्ड (15), तथा स्वीडन (20) में निम्न घनत्व पाया जाता है।

✦ अफ्रीका महाद्वीप में मॉरीशस द्वीप में सर्वाधिक जनघनत्व (587) पाया जाता है। मुख्य स्थल पर रूवाण्डा (278), बुरूण्डी (223), नाइजीरिया (137) में अपेक्षाकृत अधिक जनघनत्व है।

- अफ्रीका महाद्वीप में पश्चिमी सहारा (1), बोत्सवाना एवं नामीबिया (2), मॉरीटानिया (3), गैबोन (5), चाड (7), माली व नाइजर (8) अंगोला (10), सोमालिया (12) जाम्बिया व अल्जीरिया (13) में निम्न घनत्व दर्ज होता है।
- उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में न्यून घनत्व ही दर्ज होते हैं किन्तु कुछ देशों में जैसे कि बारबडोस (625), पोर्टोरिको (440), मार्टीनिक (346), एल साल्वाडोर (304), ग्रेनाडा (262), तथा हैती (251), में उच्च घनत्व मिलते हैं, जबकि मैक्सिको (51), संयुक्त राज्य (30), तथा कनाडा (3) में अल्प घनत्व मिलते हैं।
- दक्षिणी अमेरिका में कोलम्बिया (39), इक्वेडर (38), में सापेक्षत: उच्चतम घनत्व मिलते हैं, जबकि वेनेजुएला (27), ब्राजील, पीरू व चिली (20) तथा अर्जेन्टाइना (14) में मध्यम से निम्न घनत्व दर्ज होते हैं।
- ओशीनिया में आस्ट्रेलिया (2), न्यूजीलैण्ड (4) में निम्न घनत्व है, जबकि फीजी (46) मध्यम आबाद है।

जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)

- जनसंख्या वृद्धि, किसी एक क्षेत्र विशेष में निवासियों की संख्या में एक निश्चित समय के भीतर, जैसे 10 वर्ष में हुए परिवर्तन को दर्शाता है। इस परिवर्तन को कुल संख्या या प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।
- समय या क्षेत्र के सन्दर्भ में जनसंख्या के परिवर्तन को निश्चित करने वाले मूल तत्व जन्म दर, मृत्यु दर तथा प्रवास हैं।
- एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्ति पर जन्म तथा मृत्यु की संख्या को क्रमश: अशोधित जन्म दर तथा अशोधित मृत्यु दर कहते हैं।
- यदि जन्म दर तथा मृत्यु दर के साथ प्रवास (आप्रवास एवं उत्प्रवास) को भी सम्मिलित किया जाता है, तब उसे वास्तविक जनसंख्या वृद्धि दर कहते हैं।
- 1650 से 2000 के मध्य विश्व की जनसंख्या 550 मिलियन से बढ़कर 6000 मिलियन पहुंच गयी। वस्तुत: बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनसंख्या की चमत्कारिक वृद्धि हुई है।
- बीसवीं शताब्दी में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे–
  - (i) सघन एवं यांत्रिक कृषि के कारण भोजन उत्पादन में वृद्धि।
  - (ii) खनिज तथा अन्य संसाधनों के आधार पर विनिर्माणों उद्योगों तथा व्यापार का विकास, रोजगार के अवसरों में वृद्धि।
  - (iii) विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास से जीवन स्तर में निरन्तर सुधार।
  - (iv) स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाओं व सुविधाओं में वृद्धि होने से रोगों तथा महामारियों पर नियन्त्रण।
  - (v) नयी दुनियां के देशों में प्रवास के कारण जनसंख्या वृद्धि।
- किसी देश की जनसंख्या वृद्धि उसकी जन्म दर तथा मृत्यु दर में अन्तर का परिणाम होती है। इस अन्तर को प्राकृतिक वृद्धि कहते हैं। जन्मदर उच्च (35 प्रति हजार), मध्यम (25 प्रति हजार), तथा निम्न (25 से कम प्रति हजार) हो सकती है।
- 2001 ई० में विश्व की औसत जन्म दर 22 प्रति हजार दर्ज हुई, महाद्वीपीय स्तर पर अफ्रीका (38), एशिया (22), यूरोप (10), दक्षिणी अमेरिका (23), उत्तरी अमेरिका (14), ओशीनिया (18) में भिन्न जन्म दरें मिलती हैं।
- विश्व में मृत्यु दर का औसत 9 प्रति हजार है। अफ्रीका (14), यूरोप (14), उत्तरी अमेरिका (9), एशिया (8), तथा दक्षिणी अमेरिका (7) में मृत्यु दरों की भिन्नता पायी जाती है।
- महाद्वीपों में प्रादेशिक स्तर पर जन्म व मृत्यु दरों में भारी भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, मध्य अफ्रीका में विश्व की उच्चतम जन्म दर (46 प्रति हजार) दर्ज होती है, जबकि दक्षिणी अफ्रीका में महाद्वीप की न्यूनतम जन्म दर (2) प्रति हजार है।
- इसी प्रकार एशिया महाद्वीप में पश्चिमी एशिया में उच्चतम जन्म दर (28 प्रति हजार) तथा पूर्वी एशिया में न्यूनतम जन्म दर (15 प्रति हजार) दर्ज होती है।
- देशों के स्तर पर विश्व में उच्चतम जन्मदर अफ्रीका के नाइजर (53 प्रति हजार) तथा न्यूनतम जन्म दर मुख्य स्थल पर ट्यूनीशिया (19 प्रति हजार) तथा मुख्य स्थल के बाहर मॉरीशस (17 प्रति हजार) में दर्ज होती है। उच्चतम मृत्युदर भी अफ्रीका के नाइजर (24 प्रति हजार) में तथा न्यूनतम मृत्यु दर कुवैत (2 प्रति हजार) में मिलती है।
- विश्व की औसत वार्षिक वृद्धि दर 1.3% है, जो महाद्वीपीय स्तर पर क्रमश: अफ्रीका (2.4%), दक्षिणी अमेरिका (1.6%), एशिया (1.4%), ओशीनिया (1.1%), उत्तरी अमेरिका (0.5%), तथा यूरोप में अल्पतम (0.1%) है।
- देशों के स्तर पर सर्वाधिक वार्षिक वृद्धि दर पैलेस्टाइन (3.7%) तथा न्यूनतम वृद्धि दर जर्मनी, लिथुआनिया, माल्दोवा, रोमानिया तथा स्लोवेनिया (-0.1% - ह्रासोन्मुख) में मिलती है।

जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy)

- जनसंख्या की वृद्धि या ह्रास में जीवन प्रत्याशा भी बहुत महत्वपूर्ण सूचक है।
- उच्च मृत्युदर होने पर जीवन प्रत्याशा निम्न होती है। विश्व की औसत जीवन प्रत्याशा 67 वर्ष है। (पुरुष 65 वर्ष, स्त्रियां 69 वर्ष -क्योंकि महिलाएं जैविकीय रूप में मजबूत होती हैं)।
- अफ्रीका में अल्पतम जीवन प्रत्याशा (54 वर्ष) दर्ज होती है। एशिया (67) विश्व के औसत के निकट है। यूरोप व ओशीनिया (74 वर्ष), उत्तरी अमेरिका (77 वर्ष), तथा दक्षिणी अमेरिका (70 वर्ष) भी विश्व के औसत के ऊपर है।
- देशों के स्तर पर जापान में सर्वाधिक (85 वर्ष) तथा अफ्रीका के जाम्बिया में न्यूनतम (32 वर्ष) जीवन प्रत्याशा दर्ज होती है।

प्रजननता (Fertility)

- प्रजननता जीवित जन्मों की घटना है और संदेह प्रजनन क्षमता (Fecundity) से नहीं होना चाहिए जिसका सामान्य अर्थ हम पुनरूत्पादक क्षमता या शिशु धारण की क्षमता से लगाते हैं। (जे०आई०क्लार्क)।
- प्रजननता का सम्बन्ध वास्तविक सजीव जन्मों की आवृत्ति (Frequency) से होता है।
- प्रजनन क्षमता- किसी स्त्री की उसकी सम्पूर्ण प्रजनन अवधि में प्रजनन की सामर्थ्य ही प्रजनन क्षमता है।
- **प्रजननता की माप (Measurement of Fertility)**

1. **अशोधित जन्म दर (Crude birth rate)**

अशोधित जन्म दर =

$$\frac{\text{किसी वर्ष में जीवित जन्मों की कुल संख्या}}{\text{वर्ष के मध्य की अनुमानित जनसंख्या}} \times 1000$$

2. **प्रजनन अनुपात या शिशु स्त्री अनुपात (Fertility Ratio) or (Child woman Ratio)**

प्रजनन अनुपात =

$$\frac{\text{5 वर्ष से कम आयु की शिशुओं की कुल जनसंख्या}}{\text{प्रजनन आयु वर्ग (15-49 वर्ष) की स्त्रियों की कुल संख्या}} \times 1000$$

3. **सामान्य प्रजनन दर (General Fertility Rate)**

सामान्य प्रजनन दर =

$$\frac{\text{एक वर्ष में सजीव जन्मों की कुल संख्या}}{\text{प्रजनन आयु वर्ग (15-49 वर्ष) की स्त्रियों की कुल संख्या}} \times 1000$$

4. **आयु विशिष्ट जन्म दर (Age Specific Birth Rate)**

आयु विशिष्ट जन्म दर =

$$\frac{\text{विशिष्ट आयु वर्ग की स्त्रियों द्वारा जनित शिशुओं की कुल संख्या}}{\text{उसी आयु वर्ग के स्त्रियों की कुल संख्या}} \times 1000$$

5. **कुल प्रजनन दर = आयु विशिष्ट जन्म दरों का योग × आयु वर्गान्तर**

6. **मानक जन्म दर (Sandard birth Rate)**

मानक जन्म दर =

$$\frac{\text{सभी आयु वर्ग के प्रत्याशित जन्मों का योग}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

7. **पुनरुत्पादन दर (Reproductive Rate)**

पुनरुत्पादन दर =

$$\frac{\text{स्त्री शिशुओं के जन्मों का योग}}{\text{पुनरूत्पादक आयु वर्ग (15-49 वर्ष) के स्त्रियों की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

विश्व में लिंगानुपात

यूरोप	–	1051
उत्तरी अमेरिका	–	1050
रूसी फेडरेशन	–	1037
अफ्रीका	–	1017
लैटिन अमेरिका	–	995
ओशेनिया	–	983
एशिया	–	960
विश्व	–	993

जनसंख्या वृद्धि के सिद्धान्त
(THEORIES OF POPULATION GROWTH)

(1) **जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धान्त (Demographic Transition theory)**

✦ इस सिद्धांत के अनुसार जनसंख्या में वृद्धि क्रमिक चरणों में होती है तथा प्रत्येक देश की जनसंख्या को इन क्रमिक अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।

✦ डब्लू० एस० थाम्पसन, एफ़ डब्लू नोटेस्टीन, सी० पी० ब्लेका तथा ट्विार्था ने इस सिद्धान्त को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

✦ जनसंख्या विकास में सामान्यत: तीन या चार अवस्थाएं होती हैं। प्रोफेसर नोटेस्टीन ने इसे संक्रमण पूर्व (Pre Transition), संक्रमण कालीन (Transitional) तथा संक्रमण के पश्चात् (Post Transition) का नाम दिया है।

✦ जब एक कृषि प्रधान ग्रामीण समाज प्रौद्योगिकी आधारित नगरीय समाज में बदलता है तब जनांकिकीय प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन होता है।

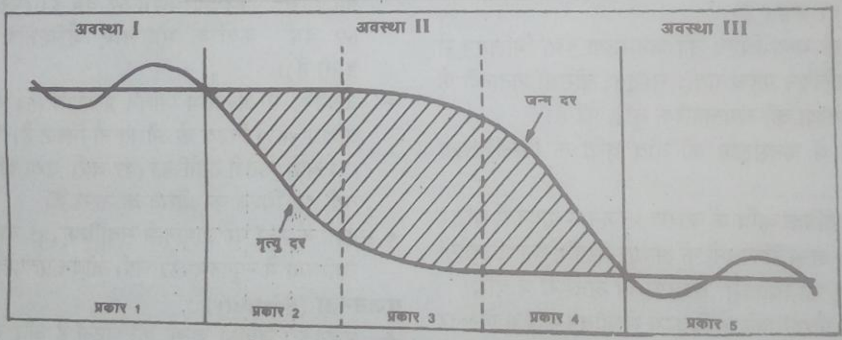

चित्र : जनांकिकीय संक्रमण मॉडल

लिंगानुपात के परिकलन की विधियां-

1. प्रति 100 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या – न्यूजीलैण्ड
   लिंगानुपात = (कुल स्त्रियां/कुल पुरुष) x 100
2. प्रति 1000 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या – भारत
   लिंगानुपात = (कुल स्त्रियां/कुल पुरुष) x 1000
3. प्रति 100 स्त्रियों पर पुरुषों की संख्या – संयुक्त राज्य अमेरिका
   लिंगानुपात = (कुल पुरुष/कुल स्त्रियां) x 100
4. प्रति 1000 स्त्रियों पर पुरुषों की संख्या–
   लिंगानुपात = (कुल पुरुष/कुल स्त्रियां) x 1000

✦ आर्थिक विकास से जुड़ी औद्योगीकरण एवं नगरीकरण प्रक्रियाओं के साथ जनसंख्या गत्यात्मकता में हुए परिवर्तनों के सहसम्बन्धों को जनांकिकीय संक्रमण मॉडल के रूप में दर्शाया गया है।

जनांकिकीय संक्रमण

अवस्था-1

प्रकार-1 आदि कालीन जनांकिकीय अवधि
उच्च जन्म दर और मृत्यु दर तथा धीमी जनसंख्या वृद्धि।

प्रकार-2 प्रसरणशील या युवा जनांकिकीय अवधि
तेजी से घटती मृत्यु दर, उच्च जन्म दर तथा जनसंख्या में तीव्र वृद्धि।

अवस्था-II

प्रकार-3 परवर्ती प्रसरणशील जनांकिकीय अवधि
घटती जन्म दर, निम्न मृत्यु दर तथा जनसंख्या वृद्धि में ह्रस।

प्रकार-4 निम्न परिवर्तनशील अथवा परिपक्व जनांकिकीय अवधि
निम्न जन्म दर और उच्च मृत्यु दर तथा घटती जनसंख्या।

अवस्था-III

प्रकार-5 जनसंख्या की लगभग शून्य वृद्धि की अवधि
निम्न जन्म दर और मृत्यु दर के लगभग समान होने से जनसंख्या वृद्धि-शून्य के लगभग होती है।

(2) **माल्थस का जनसंख्या वृद्धि का सिद्धान्त (Malthusian Theory of Population Growth)**

- माल्थस ने अपनी पुस्तक "Essay on the Principle of Population" में जनसंख्या वृद्धि के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट किया है।
- माल्थस के अनुसार जनसंख्या में वृद्धि की शक्ति पृथ्वी के द्वारा निर्वाह करने की शक्ति से अधिक है। निर्वाह के साधनों में वृद्धि होने पर जनसंख्या में भी वृद्धि होती है।
- यदि शक्तिशाली निरोधक उपाय कार्यशील न हों तो जनसंख्या में वृद्धि खाद्यान्न उत्पादन की तुलना में बहुत अधिक होती है।
- नियन्त्रण मुक्त जनसंख्या की वृद्धि गुणोत्तर श्रेणी में अर्थात् 1,2,4,8,16,32 में होती है। इससे जनसंख्या प्रति 25 वर्षों में दुगुनी अर्थात् 100% हो जायेगी। दूसरी ओर खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि समान्तर श्रेणी में अर्थात् 1,2,3,4,5,6,7,8,9 में होती है। इस दर से 25 वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि केवल 25% होगी। दो सौ वर्षों में जनसंख्या तथा निर्वाह के साधनों में अनुपात 256 प्रति 9 होगा।
- यदि जनसंख्या की इस तीव्र वृद्धि को नियंत्रित नहीं किया गया तो जनसंख्या और खाद्यान्न आपूर्ति में असंतुलन उत्पन्न होगा। अपर्याप्त भोजन के कारण समाज में दुर्भिक्ष, संक्रामक बीमारियों तथा युद्ध जैसे पाप पूर्ण कार्य होगें और जनसंख्या में भारी ह्रस होगा।
- जनसंख्या वृद्धि पर स्वैच्छिक नियंत्रण आवश्यक है अन्यथा जनाधिक्य होने पर गरीबी, दुर्भिक्ष, महामारी, युद्ध जैसे पापपूर्ण शक्तियां क्रियाशील होंगी और जनसंख्या को खाद्यान्न उत्पादन के संतुलित करेगी।
- जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए माल्थस ने दो प्रकार के उपाय सुझाये हैं-

  (1) **निरोधक या निवारक उपाय (Preventive checks)**- जैसे- नैतिक नियंत्रण, स्वैच्छिक निरोध, विवाह से निवृत्ति, संयमित विवाहित जीवन, देर से विवाह।

  (2) **सकारात्मक रोक (Positive checks)**- वे उपाय जो मानव जीवन को कम करते हैं, जैसे- युद्ध, संक्रामक बीमारियां, दुर्भिक्ष, शिशु हत्याएं, प्लेग आदि।

(3) **अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त (Optimum Population Theory)**

- इस सिद्धान्त के प्रतिपादक एडविन कैनन महोदय हैं।
- अनुकूलतम जनसंख्या से तात्पर्य जनसंख्या की उस आदर्श मात्रा से है जो किसी देश-काल में उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग और अधिक उत्पादन के लिए आवश्यक होती है।
- डाल्टन महोदय ने किसी देश में जनाधिक्य या जनाभाव की स्थिति जानने के लिए सूत्र प्रस्तुत किया है-

$$\text{आदर्श जनसंख्या (M)} = \frac{A - 0}{0}$$

जबकि M = कुव्यवस्था की मात्रा
A = वास्तविक जनसंख्या
O = आदर्श जनसंख्या

यदि M नकारात्मक है तो जनसंख्या न्यून, यदि M धनात्मक है तो जनाधिक्य तथा M का मान शून्य है तो अनुकूलतम जनसंख्या की दशा होती है।

जनसंख्या का स्थानान्तरण (POPULATION MIGRATION)

- **प्रवजन (Emigration)**- प्रवजन मानव समुदाय के एक स्थान से दूसरे स्थान को किए गये प्रवास को कहते हैं। जैसे- यूरोप के देशों के लोग दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों में व्यापार व शासन के उद्देश्य से आकर बसे थे।
- **आव्रजन (Immigration)**- आव्रजन मानव समुदाय के विभिन्न क्षेत्रों एवं स्थानों से किसी देश या प्रदेश में आगमन को कहा जाता है, जैसे- खाड़ी के देशों में भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका के मानव समुदाय का आव्रजन होता रहता है।
- बागानों में श्रमिकों की आपूर्ति, देशों का आपसी विभाजन, आर्थिक सम्पन्नता या आर्थिक विपन्नता आदि कारणों से आव्रजन होता है।
- वर्तमान समय में दक्षिणी-पूर्वी एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका से जनसंख्या का स्थानान्तरण विकसित देशों में हो रहा है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा इजरायल विदेशों से स्थानान्तरण को प्रोत्साहित करते हैं।
- खाड़ी देश इस समय आव्रजन का प्रमुख क्षेत्र है जहां बड़े पैमाने पर श्रमिकों का आव्रजन हो रहा है।
- दक्षिणी अफ्रीका स्थानान्तरण का तीसरा प्रमुख क्षेत्र है।

स्थानान्तरण या प्रवास के प्रकार

- समय, दूरी, प्रेरक तत्वों तथा क्षेत्र के आधार पर प्रवास कई प्रकार के होते हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है -

  I. समय के आधार पर- समय के आधार पर प्रवास दैनिक, ऋत्विक, अल्पकालिक अथवा दीर्घकालिक होते हैं।

  II. दूरी के आधार पर- दूरी के आधार पर प्रवास अल्प दूरी एवं लम्बी दूरी के होते हैं।

  III. प्रेरक तत्वों के आधार पर- प्रेरक तत्वों के आधार पर प्रवास आर्थिक, सामाजिक (वैवाहिक), राजनीतिक एवं जनांकिकीय होते हैं।

  IV. क्षेत्र के आधार पर- क्षेत्र के आधार पर प्रवास देशांतरिक, अन्तर्राष्ट्रीय, अर्न्तमहाद्वीपीय एवं स्थानीय होता है।
- स्थानीय प्रवास के चार प्रमुख प्रकार हैं-
  (i) ग्राम से नगर की ओर
  (ii) नगर से नगर की ओर
  (iii) ग्राम से ग्राम की ओर
  (iv) नगर से ग्राम की ओर

स्थानान्तरण के कारण (Causes of Migration)

- जनसंख्या के स्थानान्तरण के पीछे विकर्षण (Push) तथा आकर्षण (Pull) के कारक साथ-साथ क्रियाशील होते हैं।
- इन दो प्रधान कारकों के अतिरिक्त अन्य कारक भी प्रवासी के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, जैसे- सामूहिक सुरक्षा, जलवायु की

अनुकूलता, धार्मिक स्वतंत्रता, आवागमन के साधन और सूचना प्राप्ति की सुलभता आदि।

- ✦ प्रवास में प्राकृतिक कारकों का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। प्राकृतिक कारकों में जलवायु का प्रभाव सर्वाधिक रहा है। प्रवास अनुकूल जलवायु के क्षेत्रों में ही होता है।
- ✦ प्राकृतिक कारक धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकते हैं। उपजाऊ मैदान धनात्मक और विषम उच्चावच अथवा प्रतिकूल जलवायु के क्षेत्र ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं।
- ✦ जन स्थानान्तरण में प्राकृतिक कारकों की तुलना में मानवीय कारक, अधिक शक्तिशाली होते हैं। मानवीय कारकों के अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, और जनांकिकी कारक सम्मिलित हैं, जो प्रवास को प्रभावित करते हैं।

स्थानान्तरण के प्रभाव (Effects of Migration)

1. जनसंख्या का भार बढ़ना।
2. आयु वर्गों पर प्रभाव।
3. सांस्कृतिक समेकन।
4. नए वातावरण में समायोजन।
5. अन्तर्राष्ट्रीय सद्‌भावना का विकास।
6. आर्थिक ह्रास या आर्थिक विकास।

स्थानान्तरण के सिद्धान्त (Theories of Migration)

- ✦ सन् 1885 में सर्वप्रथम ई० रेवेन्सटीन महोदय ने स्थानान्तरण के सामान्य नियमों का वर्णन एक शोध-पत्र, "The Laws of Migratim" में किया था।
- ✦ आर० जे० फ्यूयोर ने प्रवास को ''आवासीय पुनर्वास'' बताया है।
- ✦ पी० रोसी ने ''जीवन चक्र की परिकल्पना'' तथा हैंगर स्ट्रैंड ने ''कालिक और स्थानिक स्थिरता'' की विचारधारा को विकसित किया है।
- ✦ जेलिंस्की ने ''गतिशीलता संक्रमण'' (Mobility Transition) की परिकल्पना का विकास किया है।
- ✦ जान क्यू स्टेवर्ट ने जनसंख्या के स्थानान्तरण को न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के साथ सम आकृतिक सम्बन्ध स्थापित किया है जो बाद में- ''ग्रेविटी मॉडल'' के नाम से जाना गया।
- ✦ सन् 1940 में जार्ज के० जिफ ने जनसंख्या के प्रवास को समझाने के लिए "Principle of Least Effort" के सिद्धान्त की रचना की।
- ✦ एस० ए० स्टोफर के अनुसार किसी क्षेत्र में आर्थिक सुअवसरों की संख्या अधिक होने पर आप्रवास भी अधिक होगा तथा कम होने पर आप्रवास कम होगा।
- ✦ उपर्युक्त के अतिरिक्त कई अन्य विद्वानों ने भी प्रवास के मॉडल बनाने का प्रयत्न किया है, जैसे- हैंगर स्ट्रैंड का ''क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्धों का सिद्धान्त'', जूलियन वालपोर्ट का प्रवास में ''आचरण सम्बन्धी सिद्धान्त'', ई० एस० ली का प्रवास की संख्या, धाराएं तथा विशेषताओं सम्बन्धी परिकल्पनाएं।

अधिवास (SETTLEMENT)

- ✦ ''पृथ्वी पर मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली सबसे अधिक महत्वपूर्ण और ठोस रचना मानवीय बस्तियाँ हैं। इनके प्रमुख अंग मकान और मार्ग हैं।''
- ✦ **अधिवास (Settlement)**- (क) मानव अधिवास की एक किस्म जिसमें एक से अधिक मकान हों। यह दो प्रकार की होती है-1. ग्रामीण 2. नगरीय।
- ✦ **अधिवास भूगोल (Settlement Geography)**- भूगोल की वह शाखा, जिसके अन्तर्गत मानव-बस्तियों की उत्पत्ति, विकास, स्थापना, स्थिति प्रतिरूप आदि का अध्ययन किया जाता है।
- ✦ **जे0 ब्रंश महोदय** ने मकानों और मार्गों को भूमि का अनुत्पादक प्रयोग (Unproductive occupation of the Soil) बतलाया है।

बस्तियों का वर्गीकरण (Classification of Settelment)

- ✦ मानवीय बस्तियों का वर्गीकरण कई आधार पर किया जाता है-
- ✦ **स्थिति के आधार पर**- मैदानी बस्ती, पहाड़ी बस्ती, पठारी बस्ती, समुद्रतटीय, मरुस्थलीय बस्तियां आदि।
- ✦ **आर्थिक आधार पर**- भारत में यदि किसी बस्ती के 75 प्रतिशत लोग कृषि कार्यों में लगे हों तो उसे 'ग्रामीण बस्ती' तथा जिसमें 75 प्रतिशत से अधिक पुरुष जनसंख्या कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में लगी हो तो वह 'नगरीय बस्ती' कहलाती है।
- ✦ **घरों के मध्य दूरी के आधार पर**- बस्तियों में मकानों की सघनता पर उन्हें 'सघन' या 'बिखरी' दो वर्गों में बांटा जाता है।

ग्रामीण अधिवास
(RURAL SETTLEMENT)

(i) किसी कृषि-प्रदेश का एक छोटा गांव।
(ii) फार्म भूमि पर ग्रामीणों के घरों का समूह।

- ✦ बस्ती (अधिवास) के रूप में ग्राम का गहरा सम्बन्ध कृषि से है। ग्रामीण बस्तियाँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं।
- ✦ **संहत ग्रामीण बस्तियाँ (अधिवास) (Clustered Settlement)**- इन बस्तियाँ में घर एक साथ या जुड़े बने होते हैं तथा परिवारों के समुदाय इन घरों में निवास करता है। यहीं यह अपने पशुओं को भी रखते हैं। नदी, घाटियों तथा उपजाऊ मैदानों में इस प्रकार की बस्तियाँ देखने को मिलती हैं। यहां गलियाँ तंग होती हैं।
- ✦ फ्रिंच और ट्रिवार्था ने सघन प्रकार की बस्तियों को न्युष्टित (Nucleated) या सघन (Compact) बस्तियाँ कहा है।
- ✦ **प्रकीर्ण बस्तियाँ (Dispersed Settlement)**- यह प्राय: पर्वतीय पठारी तथा उच्च भूमि के क्षेत्रों में बिखरी हुई बस्तियाँ होती हैं। यह दो-एक घरों की बस्तियाँ होती हैं जो किसी एक सामान्य सूत्र में बंधी होती हैं। अफ्रीका के कुछ देशों में चर्च व मस्जिदें इसी तरह होती हैं। इथोपिया के पठार, तिब्बत और अबीसीनिया के पठार पर इसी तरह की बस्तियां पायी जाती हैं। भारत में उत्तर बंगाल, हिमांचल, सिक्किम तथा उच्च पठारों पर इस तरह के (बस्तियां) अधिवास पाए जाते हैं। इसे एकाकी (Isolated) बस्तियां भी कहते हैं।
- ✦ संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा के प्रेयरी प्रदेश में कृषि-गृह (Farmstead) और वासग्रह (Homestead) प्रकीर्ण या एकाकी बस्तियों के उदाहरण हैं।
- ✦ **बस्ती-प्रतिरूप (Settlement Pattern)**- किसी स्थान या प्रदेश में बसे लोगों का भौगोलिक वितरण तथा उनके भवनों और सड़कों का सामूहिक प्रतिदर्श।

ग्रामीण बस्तियों के प्रतिरूप (Pattern of Rural Settlement)

- ✦ ग्रामीण बस्तियों के प्रतिरूप पर्यावरण के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं जो मकानों और मार्गों की स्थिति के क्रम और व्यवस्था के आधार पर निश्चित किया जाता है। ग्रामीण बस्तियों के मुख्य प्रतिरूप निम्नलिखित हैं-

(1) **रैखिक बस्ती प्रतिरूप (Linear Settlement Pattern)**- रैखिक बस्तियाँ सड़कों, नदियों तथा नहरों के साथ-साथ विकसित होती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में बाढ़ मैदानों में भी इस प्रकार की बस्तियाँ पायी जाती हैं। राइन घाटी में ऐसे प्रतिरूप वाली

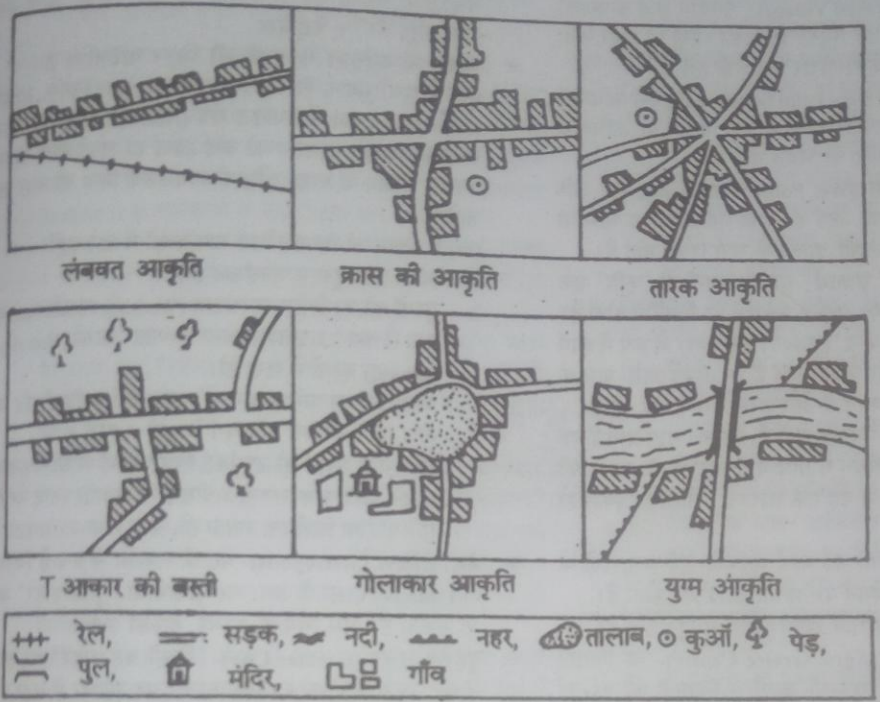

ग्रामीण बस्तियों के मुख्य प्रकार

बस्तियाँ पायी जाती हैं। गंगा के मैदान में सड़कों के किनारे ऐसी बस्तियां देखी जा सकती हैं।

✦ ऐसी बस्तियों को रिबन प्रतिरूप (Ribbon Pattern) या डोरी प्रतिरूप (String Pattern) भी कहते हैं।

(2) **वृत्ताकार प्रतिरूप (Circular Patern)**- इस प्रकार के गांव किसी तालाब या झील के चारों ओर बसते हैं। ऐसी बस्तियों के दो भेद होते हैं-

- (i) **नाभिक (Nucleated) बस्ती**, जिसके केन्द्र में प्रमुख घर होता है।
- (ii) **निहारिकीय (Nebular) बस्ती**, जिसके केन्द्र में तालाब, पंचायत चबूतरा, वटवृक्ष आदि होता है, जहां गांव के लोग मेले, उत्सव, सभा आदि के लिए इकट्ठे होते हैं।

(3) **तीर प्रतिरूप (Arrow Pattern)**, ऐसे अधिवास किसी अन्तरीप के सिरे पर जैसे कन्याकुमारी, गांव, या नदी के नुकीले मोड़ पर जैसे- बिहार के बूढ़ी गंडक नदी मोड़ों पर, सिवारी, आहो इत्यादि ग्राम है।

(4) **तारा प्रतिरूप (Star Pattern)**, ऐसे प्रतिरूप वाली बस्तियाँ प्रारम्भ में अरीय होती हैं और बाद में बढ़ते-बढ़ते बाहर की ओर जाने वाले मार्गों पर मकान बसने के फलस्वरूप बनते हैं।

(5) **अरीय प्रतिरूप (Radial Pattern)**, इस प्रतिरूप में गांवों में चारों ओर से मार्ग आकर मिलते हैं या उस बस्ती से अन्य गांवों के लिए मार्ग जाते हैं। बस्ती में चौराहा होता है, उससे त्रिज्याकार मार्गों पर घर बसे हुए होते हैं।

✦ भारत, चीन और पाकिस्तान में लगभग 1/3 गांव इसी प्रतिरूप में बसे हैं।

(6) **त्रिभुजाकार प्रतिरूप (Traingular Pattern)**, जहां कोई सड़क या नहर दूसरी सड़क या नहर से जाकर मिले परन्तु क्रास न करे। नहरों व सड़कों द्वारा त्रिभुज की दो भुजाएं फैलती हैं, और त्रिभुज के आधार की ओर खुली भूमि में गांव फैलता रहता है।

(7) **चैकरबोर्ड (शतरंज प्रतिरूप) (Checkerboard Pattern)**, मैदानी क्षेत्रों में ऐसी बस्ती जो दो मुख्य मार्गों के मिलन बिन्दु के क्रास (Cross) पर बसने लगता है जिसमें गलियां आयताकार प्रतिरूप में बनने लगती हैं, ऐसी बस्ती चैकरबोर्ड (शंतरज) प्रतिरूप कहलाती है।

✦ इसमें गलियाँ समानान्तर होती हैं। उत्तरी चीन में ऐसे बहुत से गांव हैं। उत्तरी भारत (गंगा दोआब) में भी इस प्रतिरूप की बस्तियां हैं।

ग्रामीण बस्तियों की उत्पत्ति और विकास के कारण

✦ ग्रामीण बस्तियों की उत्पत्ति और विकास के निम्न कारक हैं-

1. **प्राकृतिक कारक**- जलवायु, भूमि की बनावट, ढाल की दिशा सूर्य प्रकाश, जलापूर्ति, मिट्टी की उर्वरता, वनस्पति आदि।
2. **आर्थिक कारक**- जीविका निर्वाहन (Livelihood)।
3. **सामाजिक कारक**- सामूहिक व्यवस्था, रीति-रिवाज, प्रथाएं और परम्परायें आदि।
4. **सांस्कृतिक कारक**- धार्मिक विश्वास, शिक्षा, विज्ञान, टैक्नोलाजिकल प्रगति।
5. **राजनीतिक कारक**- शासन व्यवस्था आदि।

✦ पूर्व सोवियत संघ में दो प्रकार के कृषि फार्म होते थे।
(i) कोल खोज (Kolkhoz) सरकारी फार्म।
(ii) सोव खोज (Sovkhoz) सामूहिक फार्म।

✦ **भारत में गढ़ केन्द्रित गांव (Fort Centred Villages)**, जिसमें गांव के केन्द्रीय भाग में मिट्टी की दीवारों का बना किला होता है और उसके चारों ओर किसानों, श्रमिकों आदि के घर बसे हुए होते हैं।

✦ दक्षिण भारत में पालनी पहाड़ियों के उत्तर में बंगलौर, कर्नाटक और धारवाड़ क्षेत्रों तथा महाराष्ट्र के घूलिया, औरंगाबाद, जलगांव,

अंकोला आदि जिलों में ऐसे गांव हैं।

- **गढ़ी (चार दीवारी से घिरे गांव) (Wall Fenced Villages)** दक्षिण पश्चिम महाराष्ट्र, तमिलनाडु आदि राज्यों में ऐसे गांव मिलते हैं।
- **सीढ़ीदार गांव (Terraced Villages)**, पर्वतीय क्षेत्रों के कटकों और स्पर के मध्य में यह मिलते हैं। इनमें गांवों के ऊपर तथा नीचे दोनों ओर कृषि के सीढ़ीदार खेत होते हैं।
- **शुष्क बिन्दु अधिवास (Dry Point Settlement)**, ऐसे अधिवास होते हैं जहां बाढ़ व दलदल रहता है ऐसी जगहों पर अधिवास ऊंचे स्थानों, कटकों आदि पर स्थित होते हैं।
- **आर्द्र बिन्दु अधिवास (Wet Point Settlement)**, ऐसे अधिवास शुष्क क्षेत्रों में पाए जाते हैं। यहां अधिवास या बस्तियां जल स्त्रोतों, नदियों, तालाबों, झीलों के पास स्थित होते हैं।
- **ग्रामीण बस्तियों के प्रकार्य**, ग्रामीण बस्ती में 'कृषि' एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसका स्वरूप उत्पादन पर निर्धारित होता है। ग्रामीण बस्तियां 'सेवा केन्द्र' (मुख्यत: बड़े गांव) के रूप में कार्य करती हैं। सेवा केन्द्र ऐसे स्थान होते हैं जो अपने आस-पास के क्षेत्रों को सेवाएं प्रदान करते हैं और उनसे सेवाएं लेते भी हैं।
- भारत के प्रत्येक गांव में पंचायत होती है, जिसका कार्य प्रशासनिक है। 73 वें संविधान संशोधन में ग्रामीण पंचायतीकरण को काफी अधिकार प्राप्त हो जाने से यह एक सशक्त प्रशासनिक इकाई हो गयी है।
- वनों के पास स्थित गांवों का कार्य वानिकी एवं जलाशयों के पास स्थित ग्रामों में मत्स्यन पर आधारित क्रियाएं होती हैं।
- खानों के नजदीक स्थित गांव खनन उद्योग से जुड़े होते हैं।
- **'कृषि सेवा केन्द्र'** (Agro Service Centre)- या किसान सेवा केन्द्र आज कृषि सम्बन्धी कार्यों में किसानों को नई-नई जानकारियां दे रहे हैं। उनके कृषि यंत्रों के रख-रखाव व उनकी मरम्मत भी की जाती है।
- **नगर-ग्राम अंतर्सम्बन्ध**, नगरों से ग्रामों का और ग्रामों से नगरों के एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। कहा भी जाता है कि 'ग्राम जो सफल हुए, नगर बन गए' नगर तथा ग्राम में न छन्द है और न ही प्रतिस्पर्धा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ग्रामों को औद्योगिक उत्पादों की आवश्यकता की आपूर्ति करता है। ग्राम और नगर के निम्न प्रमुख अन्तर्सम्बन्ध हैं-

  1. सामाजिक सम्बन्ध 2. परिवहन सम्बन्ध 3. व्यापारिक सम्बन्ध । 4. कृषि सम्बन्ध।
- **अर्द्ध ग्रामीण या अर्द्ध नगरीय (Rurban)**- इस शब्द की व्युत्पत्ति आंग्ल भाषा के Rur = Rural और ban = urban के सम्मिश्रण से मिलकर (Rurban) बना। इस स्थिति में अर्द्ध ग्रामीण या अर्द्ध नगरीय बस्तियाँ होती हैं जिनका अध्ययन संक्रमणीय स्थिति होने के कारण दोनों में होता है।
- सामान्यत: **'रखन'** ऐसा शब्द है जो ऐसे क्षेत्र की ओर इंगित करता है कि जब वह न तो पूर्णतया ग्रामीण हो और न ही नगरीय।

नगरीय अधिवास
(URBAN SETTELMENT)

- **नगरीय भूगोल (Urban Geography)**- नगर एक संगठित समूह है जिसमें सामान्यत: प्रमुख व्यवसाय, कृषि कार्यों के विपरीत, वाणिज्य तथा उद्योग से सम्बन्धित हैं। - **एफ0 वॉन रिचथोफेन**
- 'नगरीय' शब्द, 'ग्रामीण' के विपरीत, उस क्रिया की तरफ संकेत करता है जो मिट्टी को जोतने की क्रिया से भिन्न है तथा जो निश्चित स्थानों पर सम्बन्धित क्रियाओं के घनिष्ठ साहचर्य में की जाती है। - **आर0 ई0 डिकिन्सन**
- 'नगर एक बड़े स्थल भाग तथा व्यापारिक मार्गों के केन्द्र पर बसा हुआ मनुष्यों एवं अधिवासों का एक स्थायी, सतत और घना समूह हैं।' - **रेटजेल**
- **भारत में वर्तमान में नगर की निम्न परिभाषा है-**

  (क) वे सभी स्थान, जिनमें नगर पालिका, नगर निगम, छावनी (Contonment) या नोटीफाइड क्षेत्र (Notified Area) या इसके समकक्ष स्थानीय प्रशासन की कोई इकाई हो अपने साथ संलग्न नगरीय फैलाव या वाह्य-वृद्धि के साथ इसके बिना भी नगर कहे जायेंगे।

  (ख) वे स्थान जो निम्नलिखित माप दण्डों में खरे उतरें-

  1. 5000 की न्यूनतम जनसंख्या हो।
  2. पुरुषों की कार्यशील जनसंख्या (Working Po;ulation) का कम से कम 75 प्रतिशत भाग कृष्येतर कार्यों (Non Agricultural) कार्यों में लगा हो।
  3. जनसंख्या का घनत्व कम से कम 1000 व्यक्ति प्रति वर्ग मील (400 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी०) हो।
  4. अन्य कोई स्थान जो उपर्युक्त विशेषताओं में सन्निकट हो लेकिन प्रान्तीय जनगणना अधीक्षक के अनुसार स्पष्ट नगरीय सुविधाएं या विशेषता रखता हो, नगर माना जा सकता है।
- **मेट्रोपोलिस (Metropolis)**- यह ग्रीक शब्द से बना है जिसका अर्थ 'Mother City' है अत: यह प्रधान या 'मुख्य शहर' कहा जा सकता है। जैसे न्यूयार्क, मुम्बई, मास्को आदि।
- **वृहत्तर नगर (Greater Ctiy)**- 'किसी बड़े शहर तथा उसके संलग्न प्रमुख क्षेत्र' को शामिल करना। यह आकार में बड़ा होता है क्योंकि यह मुख्य शहर के अतिरिक्त अन्य उपान्त (Fringe) क्षेत्रों को सम्मिलित करता है।
- **प्राथमिक नगर (Primate or Primary City)**- किसी वृहद प्रदेश का सबसे बड़ा नगर वहां का 'प्राथमिक नगर' कहलाता है। जिसकी विशेषता विशालतम नगर होने के कारण समूचे प्रदेश को नेतृत्व और प्रतिनिधित्व प्रदान करना है। मार्क जैफरसन 'प्राइमेट सिटी' सिद्धान्त के प्रणेता थे।
- **दसलक्षीय नगर (Million City)**- दस लाख जनसंख्या वाले नगर को दसलक्षीय नगर कहते हैं।
- **सन्नगर (Conurbation)**- का शब्दिक अर्थ है 'Contineous urbanisation' सतत् नगरीय क्षेत्र।
- **कोनर्बेशन** (सन्नगर) संकल्पना का प्रतिपादन पैट्रिक **गिडीज महोदय** ने किया था। इन्होंने ब्रिटेन में 7 कोनर्बेशन बताए जिसमें वृहत्तर लंदन (Greater London) को सबसे बड़ा बताया।
- **सन्नगर की विशेषताएं-**

  (i) यह एक नगरीय प्रदेश है।

  (ii) यह कई नगरों से मिलकर बनता है जिसके बीच-बीच में अनगरीय और कमनगरीय क्षेत्र भी होते हैं इनमें से एक मुख्य नगर होता है जो सबका प्रतिनिधित्व करता है।

  (iii) यह नगर कार्यों की दृष्टि से एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और कई प्रशासकीय इकाइयों में फैले हैं।

  (iv) यह एक प्रदेश सदृश्य लगता है।
- **युगल नगर (Twin Town or City)**- दो समीपवर्ती नगरों के

समूह को युगल नगर कहते हैं। यह लगभग एक ही समय में उद्‌भूत (Originated) होते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में - मिनियापोलिस-सेन्टपाल,

ब्रिटेन में - लिवरपूल-बर्कनहेड

भारत में - हैदराबाद-सिकन्दराबाद, फरुर्खाबाद, फतेहगढ़ और फैजाबाद-अयोध्या युगल नगर के प्रमुख उदाहरण हैं।

मेगालोपोलिस या वृहद नगरीय प्रदेश (Megalopolis)

✦ सर्वप्रथम मेगलोपोलिस शब्द का प्रयोग **लुईस मम्फोर्ड** महोदय ने 1938 में नगरीय विकास की चौथी अवस्था के लिए किया था।

✦ लेकिन मेगालोपोलिस का वर्तमान अर्थ **जीन गाटमैन** ने संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी पूर्वी समुद्रतटीय प्रदेश (Northeastern Seaboard) के नामकरण के लिए किया था।

✦ संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रसिद्ध मेगलोपोलिस की जनसंख्या 4 करोड़ से भी अधिक जो पूरे देश की जनसंख्या का 20 प्रतिशत है।

✦ 'मेगालोपोलिस को सन्नगर का एक विशाल रूप बताया जाता है। राइन-रूर, निचला झील प्रदेश (यू० एस० ए०) और दक्षिणी कैलीफोर्निया (यू० एस० ए०) विश्व के प्रमुख वृहद नगरीय प्रदेश हैं।

✦ **नगरीयकरण (Urbanisation)**- किसी प्रदेश की कुल जनसंख्या में नगरीय जनसंख्या के अनुपात को या इस अनुपात के बढ़ने की प्रक्रिया को 'नगरीयकरण' कहते हैं। इसके अध्ययन का सर्वप्रथम श्रेय **ए0 एफ0 बेवर** महोदय को है। इन्होंने इसका वर्णन (1899 ई०) अपनी पुस्तक 'द प्रासस ऑफ अर्बनाइजेशन' में किया था।

✦ **एबीडोस (Abydos)** मिश्र में थेब्स (Thabes) के पास स्थित नगर जो विश्व का प्रथम नगर माना जाता है। 1500 ई० पूर्व में इसकी जनसंख्या 20,000 थी।

✦ **अमलैंड (Umland)**- नगर का आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों में जहां तक प्रभाव होता है उसे 'प्रभाव क्षेत्र' या नगर का अमलैंड कहते हैं।

✦ **ग्रिफिथ टेलर** महोदय ने माना है कि देहात के केन्द्र में स्थित नगर या उसके चारों ओर के देहात से सांस्कृतिक सम्बन्ध होता है।

नगरों का प्रकार्यात्मक वर्गीकरण

✦ प्रत्येक नगर का रूप अलग होता है उनका भू-उपयोग भी अलग होता है। उनके कार्य अलग-अलग होते हैं जैसे जमशेदपुर एक औद्योगिक नगर के रूप में प्रसिद्ध है। परन्तु वाराणसी एक ध ार्मिक और शैक्षिक केन्द्र है। इस प्रकार प्रकार्य के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के नगर पाए जाते हैं-

(1) **प्रशासनिक नगर (Administrative Cities)**- इसमें नगर राष्ट्रीय या क्षेत्रीय विभागों के प्रशासनिक केन्द्र होते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर यह राजधानी नगर भी होते हैं अत: इन्हें राजधानी नगर (Capital City) भी कहते हैं। जैसे नई दिल्ली, मास्को, बीजिंग, वाशिंगटन डी० सी०, कैनबरा, पेरिस आदि।

क्षेत्रीय प्रशासनिक केन्द्र जैसे जयपुर, भोपाल, बंगलौर, लखनऊ, इम्फाल, हैदराबाद, शिमला आदि।

(2) **सुरक्षा की दृष्टि से बसाए गए नगर**- यह नगर सैनिक गतिविधियों के केन्द्र होते हैं-

(a) **किले या गढ़ों के नगर**- अलीगढ़, जोधपुर, आदि नगर।

(b) **नौ सेना केन्द्र नगर**- कोचीन और कारवार इसके उदाहरण हैं।

(c) **गौरिसन नगर**- ऐसे नगरों में सैनिक टुकड़ियां रहती है। इन्हें 'पल्टन बाजार' या 'उर्दू बाजार' नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रमुख उदाहरण महो इंदौर के पास है 'मिलिट्री हेडक्वांटर ऑफ वार' जिसका नाम है। प्रमुख गैरसिन नगर है।

(3) **सांस्कृतिक नगर या धार्मिक नगर (Religious Pillgrimage Centres)**, यह मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं-

(क) धार्मिक नगर- जैसे अयोध्या, येरुशलम, हरिद्वार, मक्का आदि इनका विकास धार्मिक महात्म्य द्वारा हुआ है।

(ख) शिक्षा तथा ज्ञान केन्द्र- जर्मनी में हाइडेलबर्ग, ब्रिटेन में आक्सफोर्ड एवं केम्ब्रिज, संयुक्त राज्य अमेरिका में हारवार्ड, भारत में इलाहाबाद, अलीगढ़ आज अपने शिक्षा संस्थानों के कारण प्रसिद्ध हैं।

(4) **उत्पादन आधारित नगर- उत्पादन (Production)** प्रकार के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के नगर पाए जाते हैं-

(i) खनन के नगर- धनबाद, खेतड़ी, काल गुर्ली, कूलगार्डी इसके उदाहरण हैं।

(ii) औद्योगिक नगर- इनमें विनिर्माण कार्य (Manufacturing Works) होता है। जमशेदपुर, दुर्गापुर, कानपुर, बर्मिंघम, पिट्सबर्ग आदि औद्योगिक नगर के उदाहरण हैं।

(iii) व्यापारिक नगर- पाकिस्तान का लाहौर- भारत का मुम्बई कलकत्ता, कनाडा का विनिपेग सभी व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित हुए थे।

(5) **परिवहन नगर (Transport Cities)**- यह भी दो वर्गों में विभाजित है-

(i) **पत्तन (Port)** समुद्री यातायात द्वारा आयात-निर्यात केन्द्र है यहां जहाजों को ठहरने व माल उतारने चढ़ाने की सुविधा होती है यहां के लोग व्यापार तथा परिवहन के कार्य में लगे रहते हैं।

(ii) **रेलमार्ग केन्द्र (Railway Centres)** रेलमार्गों के जंक्शन या केन्द्र विकसित होकर नगर बन जाते हैं। मुगलसराय या इटारसी इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(6) **पर्यटन केन्द्र या आमोद-प्रमोद नगर (Tourist Centres)**- यह नगर पर्यावरण या किसी खेल विशेष या स्वास्थ्य वर्द्धक स्थान के कारण प्रसिद्ध होते हैं। इन्हें (Health Resort) या हिल स्टेशन (Hill Station) भी कहा गया है। दार्जिलिंग, पंचमढ़ी, शिमला, बेरुत, लास एंजिल्स इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(7) **नव नगर**- यह नगर सरकार द्वारा नियोजित ढंग से बसाए जा रहे हैं। ये वह नगर हैं जिनकी ऐतिहासिक जड़ें बहुत पुरानी नहीं हैं- इन्हें 'नियोजित शहर' (Planned City) भी कहते हैं।

✦ पाकिस्तान में इस्लामाबाद और ब्राजील में ब्रासीलिया आदि ऐसे नगर हैं।

✦ सी० डी० हैरिस महोदय ने 'नगरों का कार्यात्मक वर्गीकरण अपनी पुस्तक (A functional Classification of Cities in the United States) में अपनी वर्गीकरण विधि तैयार की।

✦ हैरिस ने अपनी वर्गीकरण में (1) रोजगार आंकड़ों और (2) व्यवसाय आंकड़ों का उपयोग किया। इस आधार पर इन्होंने नगरों के 9 वर्ग का उल्लेख किया। जो निम्न है-

1. वस्तु-निर्माण उद्योग नगर (Manufacturing Cities)।
2. फुटकर व्यापार केन्द्र (Retail centres)।

3. थोक व्यापार केन्द्र (Wholesale Centres)।
4. विभिन्नकृत नगर (Diversified Cities)।
5. यातायात नगर (Transportation Cities)।
6. खनन-नगर (Mining Cities)।
7. विश्वविद्यालय नगर (Universcity Towns)।
8. रिसर्ट या अवकाश नगर (Resort and Retirement Towns)।
9. अन्य राजनैतिक नगर (Political Cities)।

नगरों के विकास की अवस्थायें
(STAGES OF URBAN DEVELOPMENT)

- प्रत्येक नगर अपनी उत्पत्ति से आगे आने वाले समयों में विकास की बहुत सी अवस्थाओं से गुजरता है कस्बे से नगर, नगर से महानगर में अपने स्वरूप को परिवर्तित करता हुआ विकास करता है।
- नगरीय विकास और उसकी अवस्थाओं का विस्तृत अध्ययन सर्वप्रथम '**पैट्रिकगिडीस**' महोदय ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'नगरों का उद्भव' (Cities in Evolution] 1931) में किया था। इन्होंने (i) इओ टेक्नीक (Eotechnic- 1000-1800 A.D. तक (ii) पौलियो टेक्नीक (Palcotechnique) 19 वीं सदी) और (iii) निओटेक्नीक (Neotechnique) का नगरीय विकास युग बताए हैं।
- **एल० मम्फोर्ड** महोदय ने अपनी पुस्तक 'नगरों की संस्कृति' (The Culture of Cities] 1938) में नगरों के विकास क्रम की 6 अवस्थाएं बतलाई हैं-
  1. इओपोलिस (Eopolis) एक छोटा बाजार या छोटा उद्योग केन्द्र।
  2. पोलिस (Polis) छोटा नगर (कस्बा)।
  3. मैट्रोपोलिस (Metropolis) प्रमुख विकसित नगर (शहर)।
  4. मेगालोपोलिस (Megolopolis) चरमसीमा पर विकसित नगर (महानगर)।
  5. टायरनोपोलिस (Tyranopolis) नगरीय विकास हासोन्मुख हो जाता है।
  6. नेक्रोपोलिस (Nekropolis) अत्यन्त बिगड़ी अर्थव्यवस्था वाला शहर।
- **ग्रिफिथ टेलर** महोदय ने नगर के विकास और उनकी सात अवस्थाओं (Seven Stages) का अपनी पुस्तक 'ज्याग्रफी इन द ट्वेन्टीन्थ सेन्चुरी' (Geography in the Twentieth Centurry) में विशद अध्ययन किया है।
- टेलर के अनुसार नगर विकास की अवस्थाएं निम्न हैं-
  1. **पूर्व शैशवावस्था (Sub Infantile Stage)**- इस प्रारम्भिक अवस्था में सिर्फ एक गली (Street) या सड़क होती है।
  2. **शैशव अवस्था (Infantile Stage)** इसमें सड़कों का ग्रिड या जाल बनने लगता है।
  3. **बाल्यावस्था (Juvenile Stage)** इसमें व्यापार क्षेत्र का विकास नगर के मध्य में हो जाता है तथा अन्य कार्यात्मक क्षेत्र स्पष्ट होने लगते हैं।
  4. **किशोरावस्था (Adolscent Stage)** इसमें आवासों की विभिन्नताएं तथा नगर का बाह्य विकास होने लगता है।
  5. **प्रौढ़ावस्था (Mature Stage)** इस अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र, आवासों से अलग हो जाते हैं आवासीय क्षेत्र भी अच्छे विशाल भवनों से लेकर गंदी बस्तियों तक बंट जाते हैं।
  6. **उत्तर प्रौढ़ावस्था (Late Mature Stage)** नगर इस अवस्था में अपने चरम (Climax) पर पहुंच जाता है तथा आधुनिक नगर नियोजन के कारण नए रूप का विकास होता है। जैसे- टोकियो, न्यूयार्क, मुम्बई आदि।
  7. **वृद्धावस्था (Senile State)** ह्रास की अवस्था है। इस अवस्था में लोग शहरों का एक बड़ा भाग छोड़ देते हैं तथा नगर का विकास रुक जाता है सम्पन्न देशों में ऐसे नगर कम हैं। एशिया में समरकंद, बुखारा, बल्ख आदि वृद्धावस्था के नगर हैं।

नगर आकारिकी
(URBAN MORPHOLOGY)

- **अकारिकी (Morphology)**- शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है- आकारों या स्वरूपों के विषय मे बहस करना (A discourse on forms)। नगर आकारिकी (Urban Morphology) में नगरों के स्वरूप का विशद अध्ययन किया जाता है। इसे 'नगर के स्वरूप और संरचना का विज्ञान' (Science of form and structure) के रूप में की जाती है।

नगरीय संरचना के प्रमुख सिद्धान्त

- नगरीय की आन्तरिक संरचना और विकास को लेकर कई तरह की संकल्पनाएं और सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं, जिनमें से प्रमुख ।सद्धान्त हैं-
  1. बर्गेज की संकेन्द्रीय पेटी सिद्धान्त (The Concentric Zone theory)।
  2. होमर हायट का खण्ड सिद्धान्त (The Sector theory or wedge theory by Homer Hoyet)।
  3. सी० डी० हैरिस और ई० एल० उलमॉन की बहुकेन्द्रीय सिद्धान्त (C.D. Harris and E.L. Ullman's The Multiple Nuclei Theory)।

(1) संकेन्द्रीय पेटी सिद्धान्त (The Concentric Zone Theory)

- नगरों के संरचना और उसके विकास के सिद्धान्त के रूप में सर्वप्रथम संकल्पना शिकागो के समाजशास्त्रीय बर्गेस ने 1920 के दशक में प्रस्तुत किया।
- बर्गेस के सिद्धान्त का मूल आधार वॉन न्यूनेन का कृषि अवस्थापन सिद्धान्त, 1826 था।
- अपने सिद्धान्त में बर्गेस ने नगर की आन्तरिक संरचना को पांच संकेन्द्रीय पेटियों के रूप में विकसित किया।

1. **प्रथम पेटी - केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र (CBD)**।
- यह नगर के केन्द्र में प्रमुख वाणिज्य, यातायात और सामाजिक जीवन केन्द्र है। इसको दो भागों में पुन: विभाजित किया।
  (a) सबसे भीतर की फुटकर व्यापार केन्द्र।
  (b) बाहर की ओर नगर की थोक व्यापार केन्द्र।

2. **द्वितीय पेटी - संक्रमणीय पेटी (Transition Zone)**।
- CBD को घेरते हुए बाहर की ओर आवासीय गिरावट का क्षेत्र होता है।
- इसमें नगर के बड़े-बड़े 'स्लम' (Slums) पाए जाते हैं, इन्हें बुराई क्षेत्र (Vice' Areas) कहते हैं।

3. **तृतीय पेटी - स्वतंत्र कार्यशील व्यक्तियों के आवास के गृहपेटी** (The Zone of Independent Working men's homes)।
- इसमें नगर की फैक्ट्री आदि में काम करने वालों के निवास होते हैं।

विषय–भूगोल , बी. ए. प्रथम बर्ष (प्रश्न–पत्र , प्रथम)

सौरमंडल

सूर्य एवं उसके चारों ओर भ्रमण करनेवाले 8 ग्रह, 65 उपग्रह, धूमकेतु, उल्काएँ तथा क्षुद्रग्रह संयुक्त रूप से सौरमंडल कहलाते हैं। सूर्य जो कि सौरमंडल का जन्मदाता है, एक तारा है और ऊर्जा तथा प्रकाश प्रदान करता है। सूर्य की ऊर्जा का स्रोत, उसके केन्द्र में हाइड्रोजन परमाणुओं का नाभिकीय संलयन द्वारा हीलियम में बदलना है।

सूर्य की संरचना : सूर्य का जो भाग हमें आँखों से दिखाई देता है, उसे प्रकाशमंडल (Photosphere) कहते हैं। सूर्य का वाह्यतम भाग जो केवल सूर्यग्रहण के समय दिखाई देता है, कोरोना (Corona) कहलाता है। कभी–कभी प्रकाशमंडल से परमाणुओं का तूफान इतनी तेजी से निकलता है कि सूर्य की आकर्षण शक्ति को पार करके अंतरिक्ष में चला जाता है; इसे सौर ज्वाला (Solar Flares) कहते हैं। जब यह पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करता है तो हवा के कणों से टकराकर रंगीन प्रकाश (Aurora Ligt) उत्पन्न करता है, जिसे उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव पर देखा जा सकता है। उत्तरी ध्रुव पर इसे 'अरौरा बोरियालिस' तथा दक्षिणी ध्रुव पर 'अरौरा आस्ट्रेलिस' कहते हैं। सौर ज्वाला जहाँ से निकलती है वहाँ काले धब्बे–से दिखाई पड़ते हैं। इन्हें ही सौर–कलंक (Sun Spots) कहते हैं। ये सूर्य के अपेक्षाकृत ठंडे भाग हैं, जिनका तापमान 1500°C होता है। सौर कलंक प्रबल चुम्बकीय विकिरण उत्सर्जित करता है, जो पृथ्वी की बेतार संचार व्यवस्था को बाधित करता है। इनके बनने–बिगड़ने की प्रक्रिया औसतन 11 वर्षों में पूरी होती है, जिसे सौर–कलंक चक्र (Sunspot-Cycle) कहते हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) ने ***आदित्य*** नामक उपग्रह का विकास किया है, जो सूर्य के ***कोरोना*** व उससे होने वाले उत्सर्जन के रहस्यों को सुलझाने का प्रयास करेगा।

सूर्य से संबंधित कुछ विशिष्ट तथ्य

पृथ्वी से न्यूनतम दूरी	– 14.70 करोड़ किमी.	केन्द्रीय दबाव	– 1 अरब एटमोस्फेयर
पृथ्वी से अधिकतम दूरी	– 15.21 करोड़ किमी.	घूर्णन अवधि	– 25.38 दिन (भूमध्य रेखा के सापेक्ष), 33 दिन (ध्रुवों के सापेक्ष)।
पृथ्वी से माध्य दूरी	– 14.98 करोड़ किमी.		
सूर्य का व्यास	– 13,92,000 किमी.		
आयतन	– पृथ्वी से 13 लाख गुना	सूर्य की आयु	– 5 बिलियन वर्ष (लगभग)
द्रव्यमान	– पृथ्वी से 3,32,000 गुना	सामान्य तारे का संभावित जीवन काल	– 10 बिलियन वर्ष (लगभग)
तलीय गुरुत्व	– पृथ्वी से 28 गुना		
केन्द्रीय घनत्व	– 100 ग्राम प्रति घन सेमी.	सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में लगा समय	– 8 मिनट, 18 सेकेंड
रासायनिक संघटन	– हाइड्रोजन–71%, हीलियम 26.5%, अन्य तत्व–2.5%	सूर्य के प्रकाश की चाल	– 3×10^8 m/s (3 लाख किमी./सेकेंड)
फोटोस्फेयर ताप (सतह का ताप)	– 6000°C	1 प्रकाश वर्ष (सूर्य के प्रकाश द्वारा एक वर्ष में चली गयी दूरी)	– 9.45×10^{12} किमी.
केन्द्र का ताप	– 15 मिलियन°C		
सूर्य धब्बों का ताप	– 1500°C	1 पारसेक (दूरी की सबसे बड़ी इकाई)	– 3.6 प्रकाश वर्ष
ऊर्जा उत्सर्जन	– 10^{26} जूल/सेकेंड (10^{26}J/s)		

ग्रह

ये सूर्य से ही निकले हुए पिंड हैं एवं सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इनका अपना प्रकाश नहीं होता तथा ये सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं व ऊष्मा प्राप्त करते हैं। सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा पश्चिम से पूर्व दिशा में करते हैं परन्तु शुक्र व अरुण इसके अपवाद हैं एवं ये सूर्य के चारों ओर पूर्व से पश्चिम दिशा में परिभ्रमण करते हैं। आंतरिक ग्रहों के अंतर्गत बुध, शुक्र, पृथ्वी व मंगल आते हैं। सूर्य से निकटता के कारण ये भारी पदार्थों से निर्मित हुए हैं जबकि, बाह्य ग्रहों में बृहस्पति, शनि, अरुण व वरुण आते हैं जो हल्के पदार्थों से बने हैं। आकार में बड़े होने के कारण इन ग्रहों को 'ग्रेट प्लेनेट्स' भी कहा जाता है। सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति और सबसे छोटा बुध है। सौरमंडल के ग्रहों का सूर्य से दूरी के बढ़ते क्रमों में विवरण निम्नानुसार है:–

संशोधित सौरमंडल तंत्र में ग्रह
(तीन वाह्यतम बौने ग्रह जिन्हें प्लूटोन्स कहा गया है)

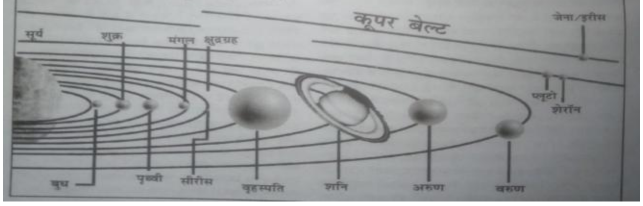

1. बुध (Mercury) : बुध सूर्य का सबसे निकटतम तथा सौर मंडल का सबसे छोटा ग्रह है। यह 88 दिनों में सूर्य की प्रदक्षिणा कर लेता है। सूर्य और पृथ्वी के बीच में होने के कारण बुध तथा शुक्र को *अन्तर्ग्रह* (Interior Planets) भी कहते हैं। **वायुमंडल के अभाव** के कारण बुध पर जीवन सम्भव नहीं है क्योंकि यहाँ दिन अति गर्म व रातें बर्फीली होती हैं। इसका तापान्तर सभी ग्रहों में सबसे अधिक (560°C) है। बुध का एक दिन पृथ्वी के 90 दिन के बराबर होता है। परिमाण (mass) में यह पृथ्वी का 18वाँ भाग है। बुध के सबसे पास से गुजरनेवाला कृत्रिम उपग्रह ***मैरिनर–10*** था जिसके द्वारा लिये गये चित्रों से पता चलता है कि इसकी सतह पर कई पर्वत, क्रेटर और मैदान हैं। इसका ***कोई भी उपग्रह नहीं*** है।

2. शुक्र (Venus) : यह सूर्य से निकटवर्ती दूसरा ग्रह है एवं सूर्य की प्रदक्षिणा 225 दिनों में करता है। यह ग्रहों की सामान्य दिशा के विपरीत सूर्य का पूर्व से पश्चिम दिशा में परिभ्रमण करता है। यह पृथ्वी के सर्वाधिक नजदीक है। सूर्य व चन्द्रमा के बाद सबसे चमकीला यही दिखाई पड़ता है। इसको *'सांझ का तारा'* (Evening Star) या *'भोर का तारा'* (Morning Star) कहते हैं क्योंकि यह शाम को पश्चिम दिशा में तथा सुबह पूरब की दिशा में आकाश में दिखाई देता है। आकार व द्रव्यमान में पृथ्वी से थोड़ा ही कम होने के कारण इसे ***'पृथ्वी की बहन'*** कहा जाता है। शुक्र के वायुमंडल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड 90–95% तक है। इस कारण यहाँ प्रेशर कुकर की दशा (Pressure Cooker Condition) उत्पन्न होती है। बुध के समान इसका भी ***कोई भी उपग्रह नहीं*** है।

3. पृथ्वी (Earth) : यह सूर्य से दूरी के क्रम में तीसरा ग्रह है एवं सभी ग्रहों में आकार में पाँचवां स्थान रखता है। यह शुक्र और मंगल ग्रह के बीच स्थित है। यह अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करती है।

यह अपने अक्ष पर **23½°** झुकी हुई है। इसका एक परिक्रमण लगभग 365 दिन में पूरा होता है। इसकी सूर्य से औसत दूरी लगभग 15 करोड़ किमी. है। चारों ओर मध्यम तापमान, आक्सीजन और प्रचुर मात्रा में जल की उपस्थिति के कारण यह सौरमंडल का अकेला ऐसा ग्रह है जहाँ ***जीवन*** है। अंतरिक्ष से यह जल की अधिकता के कारण नीला दिखाई देता है। अतः इसे **'नीला ग्रह'** भी कहते हैं।

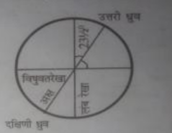

4. मंगल (Mars) : मंगल का सतह लाल होने के कारण इसे *'लाल ग्रह'* भी कहते हैं। इस ग्रह पर वायुमंडल अत्यंत विरल है। ***मार्स ओडेसी*** नामक कृत्रिम उपग्रह से यहां बर्फ छत्रकों और हिमशीतित जल की उपस्थिति की सूचना मिली है। इसीलिए पृथ्वी के अलावा यह एकमात्र ग्रह है जिस पर ***जीवन की संभावना*** व्यक्त की जाती है। इसकी घूर्णन गति पृथ्वी के घूर्णन गति के समान है। फोबोस तथा डीमोस मंगल के दो उपग्रह हैं। 'डीमोस' सौर मंडल का सबसे छोटा उपग्रह है। मंगल ग्रह का सबसे ऊँचा पर्वत 'निक्स ओलंपिया' है जो एवरेस्ट से तीन गुणा ऊँचा है।

5. बृहस्पति (Jupitar) : यह सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह है तथा सूर्य की प्रदक्षिणा 11.9 वर्ष में करता है। सौरमंडल में इसके 28 उपग्रह हैं जिनमें 'गैनिमीड' सबसे बड़ा है। यह सौरमंडल का सबसे बड़ा उपग्रह है। आयो, यूरोपा, कैलिस्टो, अलमथिया आदि इसके अन्य उपग्रह हैं। बृहस्पति को ***लघु सौर-तंत्र*** (Miniature Solar System) भी कहते हैं। इसके वायुमंडल में हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन और अमोनिया जैसी गैसें पाई जाती हैं। यहाँ का वायुमंडलीय दाब पृथ्वी के वायुमंडलीय दाब की तुलना में 1 करोड़ गुना अधिक है। यह तारा और ग्रह दोनों के गुणों से युक्त होता है क्योंकि इसके पास स्वयं की ***रेडियो ऊर्जा*** है।

पृथ्वी : कुछ विविध तथ्य

आकृति	– जियॉड (Geoid)
अक्षध्रुवीय व्यास	– 12714 किमी.
भूमध्यरेखीय व्यास	– 12756 किमी.
ध्रुवीय परिधि (घेरा)	– 40,008 किमी.
विषुवत रेखीय परिधि	– 40,075 किमी.
द्रव्यमान	– 5.97×10^{24} टन
जलीय भाग	– 71%
स्थलीय भाग	– 29%
आयतन	– 10.83×10^{11} घन किमी.
औसत घनत्व	– 5.52 (पानी के घनत्व के सापेक्ष)
पृथ्वी की अनुमानित आयु	– 4.6 बिलियन वर्ष
धरातल के क्षेत्रफल	– 51.1 करोड़ वर्ग किमी.
परिभ्रमण समय	– 23 घंटे 56 मिनट 4 सेकेंड
परिक्रमण समय	– 365 दिन 5 घंटे 48 मि. 46 से.
परिक्रमण वेग	– 29.8 किमी./सेकेंड
परिक्रमण मार्ग का लम्बाई	– 96 करोड़ किमी.
सूर्य से न्यूनतम दूरी	– 14.70 करोड़ किमी.
सूर्य से अधिकतम दूरी	– 15.21 करोड़ किमी.
सूर्य से माध्य दूरी	– 14.98 करोड़ किमी.
सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में लगा समय	– 8 मिनट, 18 सेकेंड
चंद्रमा से दूरी	– 3,84,000 किमी.
समुद्रतल से स्थल की सर्वाधिक ऊँचाई	– 8,848 मी. (माउंट एवरेस्ट)
समुद्रतल से सागर की सर्वाधिक गहराई	– 11,033 मी. (मैरियाना ट्रेंच)

6. शनि (Saturn) : यह आकार में दूसरा बड़ा ग्रह है। यह सूर्य की परिक्रमा 29.5 वर्ष में पूरी करता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता या रहस्य इसके मध्यरेखा के चारों ओर पूर्ण विकसित वलयों का होना है, जिनकी संख्या 7 है। यह वलय अत्यंत छोटे-छोटे कणों से मिलकर बने होते हैं जो सामूहिक रूप से गुरुत्वाकर्षण के कारण इसकी परिक्रमा करते हैं। शनि को 'गैसों का गोला' (Globe of Gases) एवं ***गैलेक्सी समान ग्रह*** (Galaxy Like Planet) भी कहा जाता है। आकाश में यह ग्रह पीले तारे के समान दृष्टिगत होता है। इसके वायुमंडल में भी बृहस्पति की तरह हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन और अमोनिया गैसें मिलती हैं। अब तक इसके 30 उपग्रहों का पता लगाया जा चुका है जो कि सभी ग्रहों में सर्वाधिक है। **टिटॉन** शनि का सबसे बड़ा उपग्रह है जो बुध ग्रह के बराबर है। मंगल ग्रह की भांति यह नारंगी रंग का है। टिटॉन पर वायुमंडल तथा गुरुत्वाकर्षण दोनों हैं। इसके अन्य प्रमुख उपग्रह मीमांसा, एनसीलाडु, टेथिस, डीआन, रीया, हाइपेरियन, इयापेटस तथा फोबे हैं। इसमें **फोबे** शनि की कक्षा में घूमने के विपरीत दिशा में परिक्रमा करता है। शनि अंतिम ग्रह है जिसे आँखों से देखा जा सकता है।

7. अरुण (Uranus) : इसकी खोज 1781 ई. में सर विलियम हरशेल द्वारा की गयी। यह सौर मंडल का सातवाँ तथा आकार में तृतीय ग्रह है। अधिक अक्षीय झुकाव के कारण इसे ***'लेटा हुआ ग्रह'*** भी कहते हैं। यह सूर्य की प्रदक्षिणा 84 वर्षों में करता है। यह भी शुक्र ग्रह की भांति ही ग्रहों की सामान्य दिशा के विपरीत पूर्व से पश्चिम दिशा में सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करता है। यहाँ वायुमंडल बृहस्पति तथा शनि की ही भांति काफी सघन है जिसमें हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन तथा अमोनिया है। दूरदर्शी से देखने पर यह हरा दिखाई देता है। सूर्य से दूर होने के कारण यह काफी ठंडा है। शनि की भांति अरुण के भी चारों ओर वलय है जिनकी संख्या 5 है। ये हैं—अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा और इपसिलॉन। इसके 21 उपग्रह हैं। अरुण पर सूर्योदय पश्चिम दिशा में एवं सूर्यास्त पूरब की दिशा में होती है। ध्रुवीय प्रदेश में इसे सूर्य से सबसे अधिक ताप तथा प्रकाश मिलता है।

8. वरुण (Neptune) : इसकी खोज जर्मन खगोलज्ञ जोहान गाले ने की। यह 165 वर्ष में सूर्य की परिक्रमा पूरी करती है। यहाँ वायुमंडल अति घना है। इसमें हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन तथा अमोनिया विद्यमान रहती है। यह ग्रह हल्का पीला दिखाई देता है। इसके 8 उपग्रह हैं। इनमें ट्राइटन व मेरीड प्रमुख हैं।

प्लूटो

यम या कुबेर (प्लूटो) की खोज 1930 ई. में क्लाइड टॉम्बैग ने की थी एवं इसे सौरमंडल का नवाँ एवं सबसे छोटा ग्रह माना गया था परंतु 24 अगस्त 2006 में चेक गणराज्य के प्राग में हुए इंटरनेशनल एस्ट्रोनॉमिकल यूनियन (IAU) के सम्मेलन में वैज्ञानिकों ने इससे **ग्रह का दर्जा छीन लिया।** सम्मेलन में 75 देशों के 2,500 वैज्ञानिकों ने ग्रहों की नई परिभाषा दी उनके अनुसार ऐसा ठोस पिंड जो अपना गुरुत्व करने लायक विशाल हो, गोलाकार हो और सूर्य का चक्कर काटता हो, ग्रहों के दर्जे में आएगा। साथ ही, इसकी कक्षा पड़ोसी ग्रह के रास्ते में नहीं होनी चाहिए। प्लूटो के साथ समस्या यह हुई कि उसकी कक्षा नेपच्यून की कक्षा (ऑरबिट) से ओवरलैप करती है। सीरीस, शेरॉन (Charon) और इरीस (2003 यूबी-313/जेना) के ग्रह माने जाने के विचार को भी अस्वीकृत कर दिया। नई परिभाषा में इन चारों को बौने ग्रह (Dwarf Planet) का दर्जा दिया गया है। इस प्रकार अब सौरमंडल में मात्र 8 ग्रह रह गए हैं।

आकार के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम
1. बृहस्पति 2. शनि 3. अरुण 4. वरुण
5. पृथ्वी 6. शुक्र 7. मंगल 8. बुध

द्रव्यमान के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम
1. बृहस्पति 2. शनि 3. वरुण 4. अरुण
5. पृथ्वी 6. शुक्र 7. मंगल 8. बुध

घनत्व के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम
1. बृहस्पति 2. शनि 3. वरूण 4. अरुण
5. पृथ्वी 6. शुक्र 7. मंगल 8. बुध

टेरेस्ट्रीयल ग्रह
1. बुध 2. शुक्र 3. पृथ्वी 4. मंगल

जोवियन ग्रह
1. बृहस्पति 2. शनि 3. अरुण 4. वरुण

दूरी के अनुसार ग्रहों का आरोही क्रम
1. बुध 2. शुक्र 3. पृथ्वी 4. मंगल
5. बृहस्पति 6. शनि 7. अरुण 8. वरुण

परिक्रमण अवधि के अनुसार ग्रहों का आरोही क्रम
1. बुध 2. शुक्र 3. पृथ्वी 4. मंगल
5. बृहस्पति 6. शनि 7. अरुण 8. वरुण

परिक्रमण वेग के अनुसार ग्रहों का अवरोही क्रम
1. बुध 2. शुक्र 3. पृथ्वी 4. मंगल
5. बृहस्पति 6. शनि 7. अरुण 8. वरुण

उपग्रह

ये वे आकाशीय पिंड हैं जो अपने-अपने ग्रहों की परिक्रमा करते हैं एवं अपने ग्रह के साथ-साथ सूर्य की भी प्रदक्षिणा करते हैं। ग्रहों की भांति इनकी भी अपनी चमक नहीं होती एवं ये सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। ग्रहों के समान उपग्रहों का भ्रमण पथ भी अंडाकार होता है। बुध और शुक्र का कोई उपग्रह नहीं है। सबसे अधिक उपग्रह शनि के हैं। पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह चन्द्रमा है।

चन्द्रमा से संबंधित कुछ विशिष्ट तथ्य

पृथ्वी से माध्य दूरी	– 384,365 किमी.
पृथ्वी से अधिकतम दूरी (अप-भू दूरी)	– 4,06,000 किमी.
पृथ्वी से न्यूनतम दूरी (उप-भू दूरी)	– 3,64,000 किमी.
पृथ्वी के चारों ओर घूमने की अवधि (परिभ्रमण काल)	– 27 दिन 7 घंटे 43 मिनट 11.47 सेकेंड
चन्द्रमा की घूर्णन अवधि (अपने अक्ष पर)	– 27 दिन 7 घंटे 43 मिनट, 11.47 सेकेंड
चन्द्रमा पर वायुमंडल	– अनुपस्थित
चन्द्रमा का व्यास	– 3,476 किमी.
चन्द्रमा का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान के अनुपात में	– 1 : 81.30
घनत्व (पानी के सापेक्ष)	– 3.34
घनत्व (पृथ्वी के सापेक्ष)	– 0.6058
चन्द्रमा की सतह का अदृश्य भाग	– 0.41 (41%)
चन्द्रमा के उच्चतम पर्वत की ऊँचाई	– 35,000 फीट ; लीबनिट्ज पर्वत, जो कि चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर स्थित है।

यद्यपि विभिन्न देशों ने अनेक कृत्रिम उपग्रह भी स्थापित किए हैं जो पृथ्वी की परिभ्रमण दिशा से साम्य स्थापित करने के लिए पूर्व की ओर प्रक्षेपित किए जाते हैं। सामान्यतः दूर-संवेदी उपग्रह ध्रुवीय सूर्य समतुल्य कक्षा (Polar sun-synchronous orbit) में 600–1100 किमी. की दूरी पर स्थापित किए जाते हैं। इन उपग्रहों का परिभ्रमण काल 24 घंटे का होता है। ये भूमध्यरेखा को एक निश्चित स्थानीय समय पर ही पार करते हैं जो सामान्यतः प्रातः 9 से 10 बजे होता है।

सुदूर-संवेदी उपग्रहों के द्वारा पृथ्वी के एक परिभ्रमण में सुदूर-संवेदन किया जाने वाला क्षेत्र **स्वाथ** कहलाता है। विभिन्न उपग्रहों में यह प्रायः 10 से 100 किमी. चौड़ी धरातलीय पट्टी होती है। चूंकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूर्णन करती है, अतः ये उपग्रह पृथ्वी की परिक्रमा के क्रम में क्रमशः पश्चिम के भाग को बिना कवर किए आगे बढ़ जाते हैं। इसी कारण पूरी पृथ्वी को कवर करने हेतु कई सुदूर-संवेदी उपग्रहों की आवश्यकता पड़ती है। दूर-संचार उपग्रह भू-स्थैतिक कक्षा (Geostationary orbit) में 36,000 किमी. की ऊंचाई पर स्थापित किए जाते हैं। पृथ्वी के घूर्णन काल से मेल खाने के कारण ये स्थिर से प्रतीत होते हैं। इसी कारण इन्हें भू-स्थैतिक उपग्रह भी कहा जाता है। समस्त पृथ्वी को एक साथ कवर करने के लिए न्यूनतम तीन भू-स्थैतिक उपग्रहों की आवश्यकता पड़ती है।

चन्द्रयान

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) ने आंध्र प्रदेश के श्री हरिकोटा स्थित सतीश धवन उपग्रह प्रक्षेपण केंद्र से ध्रुवीय अंतरिक्ष प्रक्षेपण यान PSLV-C-1 के माध्यम से ***चंद्रयान-1*** का 22 अक्टूबर, 2008 को चंद्रमा के कक्ष में सफलतापूर्वक स्थापित किया। इस अभियान में भारत निर्मित मानव रहित अंतरिक्ष यान ***मून इम्पैक्ट प्रोब*** को चंद्रमा की सतह पर उतारा गया। चंद्रयान-1 एक्स-रे स्पेक्ट्रोमीटर, मिनियेचर सिंथेटिक एप्रेचर राडार, मून मिनरलोजी मैपर (M-3) आदि कुल 11 अत्याधुनिक उपकरणों से लैस पहला ऐसा उपग्रह है जिसमें हाई रैजोल्यूशन रिमोट सेंसिंग के जरिए चंद्रमा की तस्वीरें देखी जा सकेंगी। यह चंद्रमा की सतह व वातावरण का संपूर्ण रासायनिक मानचित्रण करेगा तथा उसके मृदा, खनिज, बर्फ, ऊष्मा, मौसम आदि की जानकारियाँ उपलब्ध कराएगा। चंद्रयान-1 ने चन्द्रमा पर बर्फ के होने की जानकारी दी है। चंद्रयान पर नजर रखने के लिए बंगलुरु से 40 किमी. दूर ***ब्यालालू*** में इंडियन डीप स्पेस नेटवर्क सेंटर की स्थापना की गयी है। भारत के 'इसरो' व रूस के 'रॉस कॉस्मॉस' ने संयुक्त रूप से 16 अगस्त, 2009 को चंद्रयान-2 का भी डिजाइन तैयार कर लिया है। यह 2012 में प्रक्षेपित किया जाएगा तथा इसे लैंड रोवर उपकरण के मदद से चंद्रमा की सतह पर उतारा जाएगा।

उल्काश्म व उल्कापिंड

ये अंतरिक्ष में तीव्र गति से घूमते हुए अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्मांडीय कण हैं। धूल व गैस निर्मित ये पिंड जब वायुमंडल में प्रवेश करते हैं तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण तेजी से पृथ्वी की ओर आते हैं और वायुमंडलीय घर्षण से चमकने लगते हैं। इन्हें 'टूटता हुआ तारा' (Shooting Star) कहा जाता है। प्रायः ये पृथ्वी पर पहुँचने से पूर्व ही जलकर राख हो जाते हैं, इन्हें 'उल्काश्म' (Meteors) कहते हैं। परंतु, कुछ पिंड वायुमंडल के घर्षण से पूर्णतः जल नहीं पाते और चट्टानों के रूप में पृथ्वी पर आ गिरते हैं जिन्हें 'उल्कापिंड' कहा जाता है।

पुच्छल तारे या धूमकेतु

ये आकाशीय धूल, बर्फ और हिमानी गैसों के पिंड हैं जो सूर्य से दूर ठंडे व अंधेरे क्षेत्र में रहते हैं। सूर्य के चारों ओर ये लंबी किन्तु अनियमित या असमकेन्द्रित (Eccentric) कक्षा में घूमते हैं। अपनी कक्षा में घूमते हुए कई वर्षों के पश्चात जब ये सूर्य के समीप से गुजरते हैं तो गर्म होकर इनसे गैसों की फुहार निकलती है जो एक लंबी चमकीली पूंछ के समान प्रतीत होती है। कभी-कभी ये पूंछ लाखों किमी. लंबी होती है। सामान्य अवस्था में पुच्छल तारा (कॉमेट) बिना पूंछ का होता है। पुच्छल तारा के शीर्ष को **'कोमा'** कहते हैं। **लांग पीरियड कॉमेट** 70 से 90 वर्षों के अंतराल पर दिखाई पड़ता है। **हेली पुच्छलतारा** भी इन्हीं में से एक है। यह 76 वर्षों के अंतराल के बाद दिखाई पड़ता है। अंतिम बार यह 1986 ई. में देखा गया था। खगोलशास्त्रियों के अनुसार सौरमंडल में लगभग 1 लाख धूमकेतु विचरण रहे हैं।

क्षुद्रग्रह या अवान्तर ग्रह

क्षुद्रग्रह (Asteroids) मंगल और बृहस्पति ग्रह के मध्य क्षेत्र में सूर्य की परिक्रमा करनेवाले छोटे से लेकर सैकड़ों किमी. आकार के पिंड हैं। इनकी अनुमानित संख्या 40,000 है। इनकी उत्पत्ति ग्रहों के विस्फोट के फलस्वरूप टूटे हुए खंडों से हुई है, यद्यपि इस संबंध में कुछ अन्य मत भी दिए गए हैं।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

पृथ्वी की बाह्य स्थलाकृतियाँ उसकी आंतरिक संरचना से घनिष्ठ संबंध रखती हैं। यद्यपि पृथ्वी की आंतरिक संरचना का अध्ययन मुख्यतः भूगर्भशास्त्र का विषय है परंतु स्थलीय स्थलाकृतियों के विश्लेषण के लिए भूगोल में भी इसका अध्ययन किया जाता है। चूंकि आंतरिक भाग मानव के लिए दृश्य नहीं है, अतः इसके संबंध में जानकारी प्रायः अप्रत्यक्ष साधनों से ही हो सकती है। इन साधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. अप्राकृतिक साधन (Artificial Sources)

(क) घनत्व:- पृथ्वी का औसत घनत्व 5.5 है जबकि भू-पर्पटी (Crust) का घनत्व लगभग 3.0 है। इससे स्पष्ट है कि आंतरिक भागों में घनत्व की अधिकता होगी। घनत्व संबंधी विभिन्न प्रमाणों से यह पता चलता है कि पृथ्वी के क्रोड (Core) का घनत्व सर्वाधिक है।

(ख) दबाव:- क्रोड (Core) के अधिक घनत्व के संबंध में चट्टानों के भार व दबाव का संदर्भ लिया जा सकता है। यद्यपि दबाव बढ़ने से घनत्व बढ़ता है किन्तु प्रत्येक चट्टान की अपनी एक सीमा है जिससे अधिक इसका घनत्व नहीं हो सकता है, चाहे दबाव कितना ही अधिक क्यों न कर दिया जाए। तात्पर्य यह है कि आंतरिक भाग के चट्टान अधिक घनत्व वाले भारी धातुओं से बने हैं।

(ग) तापक्रम:- सामान्य रूप से प्रत्येक 32 मीटर की गहराई पर तापमान में 1°C की वृद्धि होती है परंतु बढ़ती गहराई के साथ तापमान की वृद्धि दर में भी गिरावट आती है। प्रथम 100 किमी. की गहराई में प्रत्येक किमी. पर 12°C की वृद्धि होती है। उसके बाद के 300 किमी. की गहराई में प्रत्येक किमी. पर 2°C एवं उसके पश्चात् प्रत्येक किमी. की गहराई पर 1°C की वृद्धि होती है। विवर्तनिक रूप से सक्रिय क्षेत्रों में तापमान अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। पृथ्वी के आंतरिक भाग से ऊष्मा का प्रवाह बाहर की ओर होता रहता है जो तापीय संवहन तरंगों के रूप में होता है। प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत के आगमन से यह और भी स्पष्ट हो गया है।

2. पृथ्वी की उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांतों के साक्ष्य:- ग्रहाणु परिकल्पना जहाँ पृथ्वी के अंतरतम (क्रोड) को ठोस मानती है वहीं ज्वारीय परिकल्पना एवं वायव्य निहारिका परिकल्पना में पृथ्वी के अन्तरतम को तरल माना गया है। इस प्रकार पृथ्वी के आंतरिक भाग के संबंध में दो ही संभावना बनती है, या तो यह ठोस हो सकती है या तरल।

3. प्राकृतिक साधन:

(a) ज्वालामुखी क्रिया: ज्वालामुखी उद्गार से निकलने वाला तप्त व तरल मैग्मा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी की गहराई में कहीं न कहीं ऐसी परत अवश्य है जो तरल या अर्द्धतरल अवस्था में है यद्यपि ज्वालामुखी के उद्गार से भी पृथ्वी की आंतरिक बनावट के संबंध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिल पाती।

(b) भूकम्प विज्ञान के साक्ष्य:- इसमें भूकम्पीय लहरों का सिस्मोग्राफ यंत्र (Seismograph) द्वारा अंकन करके अध्ययन किया जाता है। यह ऐसा प्रत्यक्ष साधन है जिससे पृथ्वी की आंतरिक संरचना के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है और उसके बारे में स्पष्ट अनुमान लगा पाना संभव हुआ है।

भूकंपीय लहरों की गति में भिन्नता के आधार पर पृथ्वी की आंतरिक संरचना को जानने का प्रयास किया गया है। International Union of Geodesy and Geophysics के शोध इस दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्व रखते हैं। इसने पृथ्वी के आंतरिक भाग को तीन वृहद् मंडलों में विभक्त किया है, जो निम्न है-

भू-पर्पटी (Crust): IUGG ने इसकी औसत मोटाई 30 किमी. मानी है यद्यपि अन्य स्रोतों के अनुसार क्रस्ट की मोटाई 100 किमी. बताई गई है। IUGG के अनुसार क्रस्ट के ऊपरी भाग में 'P' लहर की गति 6.1 किमी. प्रति सेकेंड तथा निचले भाग में 6.9 किमी. प्रति सेकेंड है। ऊपरी क्रस्ट का औसत घनत्व 2.8 एवं निचले क्रस्ट का 3.0 है। घनत्व में यह अंतर दबाव के कारण माना जाता है। ऊपरी क्रस्ट एवं निचले क्रस्ट के बीच घनत्व संबंधी यह असंबद्धता 'कोनराड असंबद्धता' कहलाती है। क्रस्ट का निर्माण मुख्यतः सिलिका और अल्युमिनियम से हुआ है। अतः इसे SiAl परत भी कहा जाता है।

मैंटल (Mantle): क्रस्ट के निचले आधार पर भूकंपीय लहरों की गति में अचानक वृद्धि होती है और यह बढ़कर 7.9 से 8.1 किमी. प्रति सेकेंड तक हो जाती है। इससे निचले क्रस्ट तथा ऊपरी मेंटल के मध्य एक असंबद्धता (Discontinunty) का निर्माण होता है जो चट्टानों के घनत्व में परिवर्तन को दर्शाता है। इस असंबद्धता की खोज 1909 ई. में रूसी वैज्ञानिक ए. मोहोरोविकिक (A. Mohorovicic) ने की। अतः इसे 'मोहो-असंबद्धता' (Moho-Discontinuty) भी कहा जाता है। मोहो-असंबद्धता से लगभग 2900 किमी. की गहराई तक मेंटल का विस्तार है। इसका आयतन पृथ्वी के कुल आयतन (Volume) का लगभग 83% एवं द्रव्यमान (Mass) का लगभग 68% है। मेंटल का निर्माण मुख्यतः सिलिका और मैग्नीशियम से हुआ है अतः इसे SiMa परत भी कहा जाता है। मेंटल को IUGG ने भूकंपीय लहरों की गति के आधार पर पुनः तीन भागों में बांटा है- (1) मोहो असंबद्धता से 200 किमी. (2) 200 किमी. से 700 किमी. (3) 700 किमी. से 2900 किमी.। ऊपरी मेंटल में 100 से 200 किमी. की गहराई में भूकंपीय लहरों की गति मंद पड़ जाती है एवं यह 7.8 किमी. प्रति सेकेंड मिलती है। अतः इस भाग को 'निम्न गति का मंडल' (Zone of Low Velocity) भी कहा जाता है। ऊपरी मेंटल एवं निचले मेंटल के बीच घनत्व संबंधी यह असंबद्धता रेपेटी असंबद्धता कहलाती है।

क्रोड (Core): निचले मैंटल के आधार पर 'P' तरंगों की गति में अचानक परिवर्तन आता है और यह बढ़कर 13.6 किमी. प्रति सेकेंड हो जाती है। यह चट्टानों के घनत्व में एकाएक परिवर्तन को दर्शाता है जिससे एक प्रकार की असंबद्धता उत्पन्न होती है। इसे 'गुटेनबर्ग-विशार्ट असंबद्धता' भी कहते हैं। गुटेनबर्ग-असंबद्धता से लेकर 6371 किमी. की गहराई तक के भाग को क्रोड कहा जाता है। इसे भी दो भागों में बांटकर देखते हैं- 2900 से 5150 किमी. और 5150-6371 किमी.। इन्हें क्रमशः वाह्य अंतरतम तथा आंतरिक अंतरतम (क्रोड) कहते हैं। इनके बीच पायी जानेवाली घनत्व संबंधी असंबद्धता 'लैहमेन असंबद्धता' कहलाती है। क्रोड में सबसे ऊपरी भाग में घनत्व 10 होता है जो अंदर जाने पर 12 से 13 तथा सबसे आंतरिक भागों में 13.6 हो जाता है। इस प्रकार क्रोड का घनत्व मैंटल के घनत्व के दोगुणे से भी अधिक होता है। बाह्य अंतरतम में 'S' तरंगें प्रवेश नहीं कर पाती है। आंतरिक अंतरतम में जहाँ घनत्व सर्वाधिक है, तुलनात्मक दृष्टि से अधिक तरल होने के कारण 'P' तरंगों की गति 11.23 किमी. प्रति सेकेंड रह जाती है। यद्यपि अत्यधिक तापमान के कारण क्रोड को पिघली हुई अवस्था में रहना चाहिए किन्तु अत्यधिक दबाव के कारण यह अर्द्धतरल या प्लास्टिक अवस्था में रहता है। क्रोड का आयतन पूरी पृथ्वी का मात्र 16% है परंतु इसका द्रव्यमान पृथ्वी के कुल द्रव्यमान का लगभग 32% है। क्रोड के आंतरिक भागों में यद्यपि सिलिकन की भी कुछ मात्रा रहती है परंतु इसका निर्माण मुख्य रूप से निकेल और लोहा से हुआ है। अतः इसे NiFe परत भी कहते हैं।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

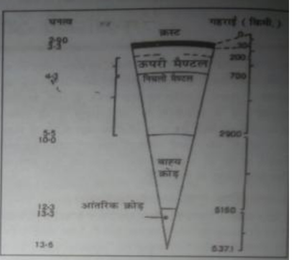

International Union of Geodesy and Geophysics के शोध विवरण के आधार पर पृथ्वी के आंतरिक भाग के विभिन्न मंडल, उनकी गहराई तथा घनत्व का आरेख द्वारा प्रदर्शन

A.2. लाप्लास की नीहारिका परिकल्पना Nebular Hypothesis of Laplace

फ्रांसीसी विद्वान लाप्लास ने 1796 में अपनी पुस्तक Exposition of the world system में अपनी Nebular Hypothesis प्रस्तुत की। लाप्लास ने काण्ट की त्रुटियों को दूर कर अपना संशोधित मत प्रस्तुत किया। लाप्लास के अनुसार अतीतकाल में आकाश में एक गतिशील एवं तप्त नीहारिका विद्यमान थी। नीहारिका की गति के कारण विकिरण द्वारा ऊष्मा का ह्रास होने लगा और उसका बाहरी भाग शीतल होने लगा और उसमें संकुचन होने लगा। संकुचन के कारण नीहारिका के आकार में ह्रास होने लगा जिसके फलस्वरूप उसकी गति में वृद्धि होने लगी। अत्यधिक गति के कारण केंद्रापसारित बल के प्रभाव से नीहारिका का मध्यवर्ती भाग बाहर की ओर उभरने लगा। ऊपरी भाग, मध्यवर्ती भाग के साथ भ्रमण नहीं कर सका और गोलाकार छल्ले के रूप में नीहारिका से अलग हो गया और उसका चक्कर लगाने लगा। लाप्लास के अनुसार नीहारिका से केवल एक ही छल्ला बाहर निकला तथा बाद में यह नौ खण्डों में विभाजित हो गया और नौ ग्रहों का निर्माण हुआ। इसी क्रिया की पुनरावृत्ति के कारण ग्रहों से उपग्रहों का निर्माण हुआ। नीहारिका का अवशिष्ट भाग सूर्य बना।

रॉश का संशोधन:- 19वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांसीसी विद्वान रॉश ने यह संशोधन किया कि नीहारिका से केवल एक छल्ला बाहर नहीं निकला बल्कि नौ छल्ले निकले तथा प्रत्येक छल्ला घनीभूत होकर ग्रह बना। इस क्रिया की पुनरावृत्ति से ग्रहों से उपग्रहों का निर्माण हुआ।

प्रारम्भ में इस परिकल्पना को पर्याप्त समर्थन मिला किंतु आज सौरमण्डल संबंधी नवीन वैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धांतों के कारण इस परिकल्पना का समर्थन मात्र रहा। इसकी निम्न त्रुटियों के कारण इसे तर्कहीन प्रमाणित कर दिया गया।

1. कोणीय आवेग की स्थिरता के सिद्धांत के अनुसार मौलिक नीहारिका का कोणीय आवेग, वर्तमान सूर्य एवं उसके सदस्य ग्रहों के कुल कोणीय आवेग के बराबर होना चाहिए, जबकि ऐसा न होकर संपूर्ण कोणीय आवेग का 98% भाग ग्रहों तथा 2% भाग वर्तमान सूर्य में है।
2. नीहारिका से केवल नौ छल्ले ही क्यों निकले? अधिक क्यों नहीं? घनीभवन से सारा पदार्थ एक ही गोल पिण्ड के रूप में नहीं बदल सकता। नीहारिका से छल्लों के निकलने का क्रम बंद क्यों हो गया।
3. नीहारिका से उत्पन्न ग्रह प्रारंभ में द्रवित अवस्था में रहे होंगे, परंतु द्रवित अवस्था में ग्रह निर्बाध रूप में परिभ्रमण नहीं कर सकते।
4. इस परिकल्पना के अनुसार सभी ग्रहों के उपग्रहों को अपने जनक ग्रह की दिशा में ही घूमना चाहिए जबकि शनि एवं बृहस्पति ग्रह के उपग्रह विपरीत दिशा में घूमते हैं।
5. तप्त नीहारिका कहाँ से आयी? उसमें ऊष्मा एवं गति कैसे उत्पन्न हुई? इन प्रश्नों के उत्तर इस परिकल्पना में नहीं मिलते हैं।
6. यदि सूर्य नीहारिका का ही भाग है तो तरल अवस्था में होना चाहिए जिससे ऐसा प्रतीत हो कि एक नवीन छल्ला पृथक होकर बाहर निकलने वाला है। परंतु ऐसा नहीं है।

उपर्युक्त त्रुटियों के कारण वर्तमान में यह परिकल्पना मान्य नहीं है।

B.1. चैम्बरलिन तथा मोल्टन की ग्रहाणु (परिकल्पना)

USA के भूविज्ञानी मोल्टन ने 1905 में व ज्योतिर्विज्ञानी चैम्बरलिन ने ... में ग्रहाणु परिकल्पना प्रस्तुत की। उनके अनुसार सूर्य एक सर्पिल नीहारिका के रूप में आकाश में परिभ्रमण कर रहा था तभी एक महानतम तारा सूर्य के निकट पहुँचा। इस तारे की आकर्षण शक्ति से सूर्य का ऊपरी भाग विदीर्ण होने लगा और उसमें से अनेक छोटे-छोटे टुकड़े निकलकर पृथक हो गये। इन टुकड़ों को ग्रहाणु की संज्ञा दी गयी। मूलपिण्ड का अवशिष्ट भाग वर्तमान सूर्य है। बिखरे हुए टुकड़े कालांतर में केन्द्रकों के चारों ओर घनीभूत हो गये तथा उनसे ग्रहों एवं उपग्रहों की रचना हुई। ये ग्रह पूर्णतः ठोस थे तथा मूल सर्पिल नीहारिका के रूप में थे।

इस परिकल्पना के समर्थक मानते हैं कि इससे पृथ्वी, वायुमण्डल, महासागरों की उत्पत्ति के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। उनका तर्क है कि ग्रहाणुओं के आपस में टकराने और पुनर्संगठित होने से दबाव बढ़ा और ऊष्मा की उत्पत्ति हुई जिससे ज्वालामुखी क्रियाएं होने लगीं। ज्वालामुखी क्रियाओं से जलवाष्प व गैसों की उत्पत्ति हुई जिससे वायुमण्डल बना। जब वायुमण्डल की जलवाष्प संतृप्त बिंदु पर पहुँच गयी तो झीलों के रूप में महासागरों की उत्पत्ति हुई।

मूल्यांकन:- (1) इस परिकल्पना के अनुसार सभी ग्रहों का निर्माण अलग-अलग ग्रहाणुओं से हुआ है। इस कारण ग्रहों को एक नियमानुसार परिभ्रमण नहीं करना चाहिए किंतु सभी ग्रह एक ही नियमानुसार परिभ्रमण करते हैं।
(2) ग्रहाणुओं के एकत्रीकरण के द्वारा नौ ग्रह ही क्यों बने? कम या ज्यादा क्यों नहीं बने?
(3) ग्रहाणुओं के संगठन से निर्मित ग्रहों का उतना कोणीय आवेग नहीं हो सकता जितना कि आज ग्रहों में है।
(4) इस विचारधारा के अनुसार ग्रह सदैव ठोस थे परंतु भूविज्ञानी ... काल में तरल अवस्था में थे।
(5) दो तारे एक दूसरे के समीप क्यों आये? तारे की आकर्षण शक्ति से विखंडित पदार्थ पुनः तारे से क्यों नहीं मिले? इन आपत्तियों के समाधान इस परिकल्पना द्वारा प्रस्तुत नहीं किये गये।

B.2. जेम्स जीन्स की ज्वारीय (Tidal) परिकल्पना:-

ब्रिटिश गणितज्ञ जेम्स जीन्स ने 1919 में अपनी ज्वारीय परिकल्पना प्रस्तुत की। उनके अनुसार आदिकालीन सूर्य गैस का धधकता हुआ विशाल पुंज था जो अपनी कक्षा में भ्रमण कर रहा था तभी एक भ्रमण करता हुआ विशालकाय तारा सूर्य के समीप आने लगा। इस तारे की आकर्षण शक्ति से सूर्य में ज्वार उत्पन्न होने लगा। जब तारा सूर्य के अधिक निकट आ गया तो ज्वारीय पदार्थ सूर्य से पृथक होकर तारे की ओर अग्रसर हुआ किंतु तब तक तारा काफी दूर निकल चुका था जिस कारण ज्वारीय पदार्थ न तो तारे के पास जा सका और न ही सूर्य में वापस, प्रत्युत सूर्य की आकर्षण शक्ति से प्रभावित होकर सूर्य की परिक्रमा करने लगा। करोड़ों km लम्बे सिगार के आकार का ज्वारीय पदार्थ बीच में मोटा किनारे पर पतला था जिसका कारण सूर्य तथा तारे का आकर्षण था। यह ज्वारीय पदार्थ ठण्डा होने से संकुचित होने लगा तथा विखंडित होकर विभिन्न आकार के ठोस ग्रहों में परिणत हो गया। बाद में विभिन्न ग्रहों के सूर्य के निकट आने पर सूर्य की आकर्षण शक्ति से उनमें भी ज्वार उत्पन्न हुए तथा ज्वारीय पदार्थ के विखंडित तथा घनीभूत होने से उपग्रहों का निर्माण हुआ।

जेफ्रीज ने 1929 में आगे यह संशोधन किया कि सूर्य तथा तारे के अलावा तीसरा तारा घूमता हुआ आ गया जिससे उनमें टक्कर हो गयी और उसके कुछ भाग आकाश में बिखर गये। इन पदार्थों से ही कालांतर में ग्रहों व उपग्रहों का ...

मूल्यांकन (1) ज्वार उत्पादन का अभिकर्ता विशाल तारा कहाँ से आया तथा बाद में कहाँ गया? दुबारा सूर्य के समीप क्यों नहीं आया? सूर्य की आकर्षण शक्ति से उसमें ज्वार उत्पन्न क्यों नहीं हुआ।
(2) सूर्य से निःसृत पदार्थों का घनीभवन किस प्रकार हुआ।
(3) ग्रहों की सिगार आकृति अनुरूप व्यवस्था में मंगल ग्रह तदनुरूप नहीं है।
(4) तारों में आपस में टकराने की संभावनाएं बहुत कम हैं।
(5) यह परिकल्पना अधिक कोणीय संवेग को समझाने में असमर्थ है।

B.3. होयल तथा लिटिलटन की नवतारा (Nova) परिकल्पना:-

कैम्ब्रिज वि.वि. के 2 गणितज्ञ होयल तथा R लिटिलटन ने सौरपरिवार की उत्पत्ति के सम्बंध में अपनी पुस्तक "Nature of the universe" में 1939 में "नवतारा" सिद्धांत प्रस्तुत किया। लिटिलटन के अनुसार ब्रह्माण्ड में तीन तारे थे सूर्य, उसका साथी तारा तथा पास आता हुआ एक अन्य तारा।

होयल के अनुसार तारे हाइड्रोजन गैस के बने हैं। ये तारे ब्रह्माण्ड में बिखरी विरल गैस राशि का कुछ भाग ग्रहण करके धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं। इनके आकार की वृद्धि के साथ साथ तापमान में भी वृद्धि होती जाती है। साथी तारा अपने विकिरण को कायम रखने के लिए अपने हाइड्रोजन भंडार का तीव्रता से उपयोग कर रहा था। अंत में हाइड्रोजन का भंडार समाप्त हो गया फलस्वरूप साथी तारे में केंद्रीय आणविक प्रतिक्रिया प्रारंभ हो गयी जिस कारण साथी तारा ध्वस्त होकर भयंकर रूप में विस्फोटित हो गया। इस प्रकार गैस की विशाल धूलराशि का आविर्भाव हो गया जिसके घनीभवन से विभिन्न ग्रहों की रचना हुई।

8.4. ऑटोस्मिड की अंतरतारक धूल (Inter-Stellar Dust) परिकल्पना:

रूसी वैज्ञानिक ऑटोस्मिड ने १९४३ में अपनी अंतरतारक धूल परिकल्पना का प्रतिपादन किया। आदिकाल में ब्रह्माण्ड में अत्यधिक मात्रा में गैस एवं धूलकण सूर्य का चक्कर लगा रहे थे जो धीरे धीरे घनीभूत होकर संगठित होते गये और एक चपटी तश्तरी में बदल गये। गैस एवं धूलकणों का संगठन केन्द्र के इर्द गिर्द हुआ जिससे विभिन्न संगठित राशियों में पारस्परिक घर्षण उत्पन्न हो गया। घर्षण क्रिया से इन धूल गैस संगठित पुंजों में ताप की उत्पत्ति हो गयी। घर्षण के अवरोध के कारण सूर्य का परिभ्रमण भी मंद पड़ गया।

इस प्रकार कई ठोस पिण्ड बन गये जो अंततः ग्रह बने और अपने समीप की धूलकणों को आत्मसात करते गये और दीर्घकाल के पश्चात वृहद् ग्रह बन गये। शेष गैस धूल कणों का परिभ्रमण ग्रहों के चारों ओर से संगठित होते गये और कालांतर में उपग्रहों में परिणित हो गये।

पृथ्वी का भूगर्भिक इतिहास

उल्का पिंडों एवं चन्द्रमा के चट्टानों के नमूनों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हमारी पृथ्वी की आयु **4.6 अरब वर्ष** है। पृथ्वी पर सबसे प्राचीन पत्थर नमूनों के रेडियोधर्मी तत्वों के परीक्षण से उसके 3.9 बिलियन वर्ष पुराना होने का पता चला है। रेडियोसक्रिय पदार्थों के अध्ययन के द्वारा पृथ्वी की आयु की सबसे विश्वसनीय व्याख्या हो सकी है। पियरे क्यूरी एवं रदरफोर्ड ने इनके आधार पर पृथ्वी की आयु दो से तीन अरब वर्ष अनुमानित की है। पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास की व्याख्या का सर्वप्रथम प्रयास फ्रांसीसी वैज्ञानिक कास्ते-द-बफन ने किया। वर्तमान समय में पृथ्वी के इतिहास को कई कल्प (Era) में विभाजित किया गया है। ये कल्प पुनः क्रमिक रूप से युगों (Epoch) में व्यवस्थित किए गए हैं। प्रत्येक युग पुनः छोटे उपविभागों में विभक्त किया गया है जिन्हें 'शक' (Period) कहा जाता है। प्रत्येक शक की कालावधि निर्धारित की गई है एवं जीवों तथा वनस्पतियों के विकास पर भी प्रकाश डाला गया है।

	कल्प (Era)	युग (Epoch)	शक (Period)	प्रारम्भ (वर्ष पूर्व)	समाप्ति (वर्ष पूर्व)	कुल अवधि (वर्ष)
1.	प्रीपैल्योजोइक	–	(1) आर्कियन या एजोइक	अत्यन्त प्राचीन काल	अत्यन्त प्रचीन काल	–
		–	(2) प्रीकैम्ब्रियन या एलगानिकन	–	–	–
2	पैल्योजोइक	प्रथम युग	(1) कैम्ब्रियन	600 मिलियन काल	500 मिलियन	100 मिलियन
			(2) आर्डोविसियन	500 मिलियन	440 मिलियन	60 मिलियन
			(3) सिल्यूरियन	440 मिलियन	400 मिलियन	40 मिलियन
			(4) डिवोनियन	400 मिलियन	350 मिलियन	50 मिलियन
			(5) कार्बोनीफेरस	350 मिलियन	270 मिलियन	80 मिलियन
			(6) पर्मियन	270 मिलियन	225 मिलियन	45 मिलियन
3	मेसोजोइक	द्वितीयक युग	(1) ट्रियासिक	225 मिलियन	180 मिलियन	45 मिलियन
			(2) जुरैसिक	180 मिलियन	135 मिलियन	45 मिलियन
			(3) क्रिटैशियस	135 मिलियन	70 मिलियन	65 मिलियन
4	सेनोजोइक	तृतीयक युग	(1) पैलियोसीन	70 मिलियन	60 मिलियन	10 मिलियन
			(2) इयोसीन	60 मिलियन	40 मिलियन	20 मिलियन
			(3) ओलिगोसीन	40 मिलियन	25 मिलियन	15 मिलियन
			(4) मायोसीन	25 मिलियन	11 मिलियन	14 मिलियन
			(5) प्लायोसीन	11 मिलियन	1 मिलियन	10 मिलियन
5	नियोजोइक	चतुर्थक युग	(1) प्लीस्टोसीन	1 मिलियन	10 हजार	9 लाख 90 हजार
			(2) होलोसीन	10 हजार	10 हजार	–

पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास से संबंधित प्रमुख तथ्य

1. **आद्य कल्प (pre-palaeozoic Era)** : इसे आर्कियन व प्री-कैम्ब्रियन दो भागों में बांटा गया है।

(i) **आर्कियन** काल के शैलों में जीवाश्मों का पूर्णतः अभाव है। इसलिए इसे प्राग्जैविक (Azoic) काल भी कहते है। इन चट्टानों में ग्रेनाइट तथा नीस की प्रधानता है, जिनमें सोना तथा लोहा पाया जाता है। इसी काल में कनाडियन व फेनोस्कैंडिया शील्ड निर्मित हुए हैं।

(ii) **प्री-कैम्ब्रियन** काल में रीढ़विहीन जीव का प्रादुर्भाव हो गया था। इस काल में गर्म सागरों में मुख्यतः नर्म त्वचा वाले रीढ़विहीन जीव थे। यद्यपि समुद्रों में रीढ़युक्त जीवों का भी प्रादुर्भाव हो गया, परंतु स्थलभाग जीवरहित था। भारत में प्री-कैम्ब्रियन काल में ही अरावली पर्वत व धारवाड़ चट्टानों का निर्माण हुआ।

2. **पुराजीवी महाकल्प (Palaeozoic Era)** : इसे प्राथमिक युग भी कहा जाता है। इसके निम्न उपभाग हैं-

(i) **कैम्ब्रियन** काल में प्रथम बार स्थल भागों पर समुद्रों का अतिक्रमण हुआ। प्राचीनतम अवसादी शैलों (Sedimentary Rocks) का निर्माण कैम्ब्रियन काल में ही हुआ था। भारत में विंध्याचल पर्वतमाला का निर्माण इसी काल में हुआ था। पृथ्वी पर इसी काल में सर्वप्रथम वनस्पति तथा जीवों की उत्पत्ति हुई। ये जीव बिना रीढ़ की हड्डी वाले थे। इसी समय समुद्रों में घासों की उत्पत्ति हुई।

(ii) **आर्डोविसियन** काल में सागरीय वनस्पतियों का विस्तार हुआ तथा समुद्र में रेंगने वाले जीव भी उत्पन्न हुए। स्थल भाग अभी भी जीवविहीन था।

(iii) **सिल्यूरियन** काल में ही रीढ़ वाले जीवों का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ एवं समुद्रों में मछलियों की उत्पत्ति हुई। सिल्यूरियन काल में रीढ़ वाले जीवों का विस्तार मिलता है, इसलिए इसे 'रीढ़ वाले जीवों का काल' (Age of Vertebrates) कहते हैं। इस काल में प्रवाल जीवों का विस्तार मिलता है। स्थल पर पहली बार पौधों का उद्भव इसी समय हुआ। ये पौधे पत्ती विहीन थे एवं आस्ट्रेलिया में उत्पन्न हुए थे। यह काल व्यापक कैलिडोनियन पर्वतीय हलचलों का काल भी है। इसी समय स्कैंडिनेविया व स्कॉटलैंड के पर्वतों का निर्माण हुआ।

(iv) **डिवोनियन** काल में पृथ्वी की जलवायु समुद्री जीवों विशेषकर मछलियों के सर्वाधिक अनुकूल थी। इसी समय शार्क मछली का भी आविर्भाव हुआ। अतः इसे 'मत्स्य युग' (Fish Age) के रूप में जाना जाता है। उभयचर जीवों (Amphibians) की भी उत्पत्ति हुई। फर्न वनस्पतियों की भी उत्पत्ति हुई। पौधों की ऊंचाई 40 फीट ऊंची पहुंच गयी थी। इस समय कैलिडोनियन पर्वतीकरण भी बड़े पैमाने पर हुआ एवं ज्वालामुखी क्रियाएं भी सक्रिय हुईं।

(v) **कार्बोनीफेरस** युग में उभयचरों का विकास व विस्तार बढ़ता गया। रेंगने वाले जीव (Raptiles) का भी स्थल पर आविर्भाव हुआ। इस काल में 100 फीट ऊंचे पेड़ भी उत्पन्न हुए। यह 'बड़े वृक्षों (ग्लोसोप्टिरस वनस्पतियों) का काल' कहलाता है। इस समय बने भ्रंशों में पेड़ों के दब जाने से गोंडवाना क्रम के चट्टानों का निर्माण हुआ जिसमें कोयले के व्यापक निक्षेप मिलते हैं।

(vi) **पर्मियन** युग में हर्सीनियन पर्वतीकरण का काल है। इस समय भ्रंशों के निर्माण के कारण ब्लैक फॉरेस्ट व वास्जेज जैसे भ्रंशोत्थ पर्वतों का निर्माण हुआ। स्पेनिश मेसेटा, अल्ताई, तिएनशान, अप्लेशियन जैसे पर्वत भी इसी काल में निर्मित हुए। इस समय स्थल पर जीवों व वनस्पतियों की अनेक प्रजातियों का विकास देखा गया। भ्रंशन के कारण उत्पन्न आंतरिक झीलों के वाष्पीकरण से पृथ्वी पर पोटाश भंडारों का निर्माण हुआ।

3. **मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era)**: इसे द्वितीयक युग भी कहा जाता है। इसे ट्रियासिक, जुरैसिक व क्रिटेशियस कालों में बांटा गया है।

(i) **ट्रियासिक** काल में स्थल पर बड़े-बड़े रेंगने वाले जीव का विकास हुआ। इसीलिए इसे 'रेंगने वाले जीवों का काल' (Age of Raptiles) कहा जाता है। यह काल आर्कियोप्टेरिक्स की उत्पत्ति का काल था। ये स्थल एवं आकाश दोनों में चल सकते थे। इस समय तीव्र गति से तैरने वाले लॉबस्टर (केकड़ा समूह का प्राणी) का उद्भव भी हुआ। स्तनधारी भी उत्पन्न होने लगे थे। मांसाहारी मत्स्यतुल्य रेप्टाइल्स सागरों में उत्पन्न हुए। रेप्टाइल्स में भी स्तनधारियों की उत्पत्ति हो गयी।

(ii) **जुरैसिक** काल में मगरमच्छ के समान मुख और मछली के समान धड़ वाले जीव, डायनासोर रेप्टाइल्स का विस्तार हुआ एवं लॉबस्टर प्राणी बढ़ते चले गये। जलचर, स्थलचर व नभचर तीनों का आविर्भाव हो गया। जूरा पर्वत का संबंध इसी काल से जोड़ा जाता है। पुष्पयुक्त वनस्पतियां इसी काल में आई थीं।

(iii) **क्रिटेशियस** काल में एंजियोस्पर्म (आवृत्तबीजी) पौधों का विकास प्रारंभ हुआ। बड़े-बड़े कछुओं का उद्भव भी इस काल में देखा गया। मैग्नेलिया व पोपनार जैसे शीतोष्ण पतझड़ वन के वृक्ष विकसित हुए। उत्तरी-पश्चिमी अलास्का, कनाडा, मैक्सिको, ब्रिटेन के डोबर क्षेत्र व आस्ट्रेलिया आदि में खड़िया मिट्टी का जमाव हुआ। पर्वतीकरण अत्यधिक सक्रिय था। रॉकी व एंडीज की उत्पत्ति आरंभ हो गयी। भारत के पठारी भाग में क्रिटेशियस काल में ही ज्वालामुखी लावा का दरारी उद्भेदन हुआ जिससे 'दक्कन ट्रैप' व काली मिट्टी का निर्माण हुआ है।

4. **नवजीवी महाकल्प (Cenozoic Era)** : इस कल्प को तृतीयक या टर्शियरी युग भी कहा जाता है। इसे पैल्योसीन, इओसीन, ओलीगोसीन, मायोसीन व प्लायोसीन कालों में बांटा गया है। इसी कल्प के विभिन्न कालों में अल्पाइन पर्वतीकरण हुए एवं विश्व के सभी नवीन मोड़दार पर्वतों आल्प्स, हिमालय, रॉकी, एंडीज आदि की उत्पत्ति हुई।

(i) **पैल्योसीन** काल में अल्पाइन पर्वतीकरण प्रारंभ हो गये थे। एवं स्थल पर स्तनपायियों का विस्तार हो रहा था। इसी कल्प में सर्वप्रथम स्तनपायी (mamalians) जीवों व पुच्छहीन बंदरों (Ape) का आविर्भाव हुआ।

(ii) **इओसीन** काल में स्थल पर रेंगने वाले जीव प्रायः विलुप्त हो गये। प्राचीन बंदर व गिब्बन म्यांमार में उत्पन्न हुए। हाथी, घोड़ा, रेनोसेरस (गैंडा), सूअर के पूर्वजों का आविर्भाव हुआ।

(iii) **ओलीगोसीन** काल में बिल्ली, कुत्ता, भालू आदि की उत्पत्ति हुई। पुच्छहीन बंदर का आविर्भाव हुआ, जिसे मानव का पूर्वज कहा जा सकता है। वृहत् हिमालय की उत्पत्ति का मुख्यकाल यही है।

(iv) **मायोसीन** काल में बड़े आकार के(60 फीट)शार्क मछली, प्रोकानसल (पुच्छहीन बंदर), जल पक्षी (हंस, बत्तख) पेंग्विन इसी काल में उत्पन्न हुए। हाथी का भी विकास इसी काल में हुआ। मध्य या लघु हिमालय की उत्पत्ति का मुख्य काल यही है।

(v) **प्लायोसीन** काल में बड़े स्तनपायी प्राणियों की संख्या में ह्रास हो गया। शार्क का विनाश हो गया, मानव के पूर्वज का विकास हुआ एवं आधुनिक स्तनपायियों का आविर्भाव हुआ। शिवालिक की उत्पत्ति इसी काल में हुई। हिमालय पर्वतमाला तथा दक्षिण के प्रायद्वीपीय भाग के बीच स्थित जलपूर्ण द्रोणी टेथिस भू-सन्नति में अवसादों के जमाव से उत्तरी विशाल मैदान का आविर्भाव इसी काल में होने लगा था।

5. **नूतन महाकल्प (Neozoic Era)** : इसे चतुर्थक युग भी कहा जाता है। प्लीस्टोसीन व होलोसीन इसके दो उपभाग हैं-

(i) **प्लीस्टोसीन काल** में यूरोप में चार हिमयुग देखे गए। ये थे- गुंज(Gunz), मिन्डेल(Mindel), रिस (Riss) तथा वुर्म (Wurm)। विभिन्न हिमकालों के बीच में अंतर्हिम काल (Inter glacial age)देखे गए जो तुलनात्मक रूप से उष्णकाल था। मिन्डेल व रिस के बीच का अंतर्हिम काल सर्वाधिक लम्बी अवधि का था। उत्तरी अमेरिका में इस समय नेब्रास्कन, कन्सान, इलीनोइन या आयोवा व विंस्कासिन हिमकाल देखे गए। नेब्रास्कन व कन्सान के बीच अफ्टोनियन, कन्सान व इलीनोइन के बीच यारमाउथ, इलीनोइन व विंस्कासिन के बीच संगमन अंतर्हिम काल था। इस युग के अंत में हिम चादर पिघलते चले गये एवं स्कैंडिनेवियन क्षेत्र की ऊंचाई में निरंतर वृद्धि हुई। पृथ्वी पर उड़ने वाले 'पक्षियों का आविर्भाव' प्लीस्टोसीन काल में ही माना जाता है। मानव तथा अन्य स्तनपायी जीव वर्तमान स्वरूप में इसी काल में विकसित हुए।

(ii) **होलोसीन** या अभिनव काल में तापमान वृद्धि के कारण प्लीस्टोसीन काल के हिम की समाप्ति हो गयी तथा विश्व की वर्तमान दशा प्राप्त हुई जो अभी भी जारी है। इसी समय सागरीय जीव वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुए। स्थल पर मनुष्य ने कृषि कार्य तथा पशुपालन प्रारंभ कर दिया।

पृथ्वी के दो महत्वपूर्ण भाग हैं महासागर और महाद्वीप। पृथ्वी के 70.8% भाग में महासागर (जलमंडल) तथा 29.2% भाग में महाद्वीप (स्थलमंडल) का विस्तार है। दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलभाग अधिक है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि महाद्वीप एक-दूसरे से दूर खिसक रहे हैं। इसके संबंध में कई सिद्धान्त भी प्रतिपादित किए गए हैं।

महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत (Continental Drift Theory) : प्रसिद्ध जर्मन विद्वान वेगनर ने 1920 के दशक में यह सिद्धांत प्रस्तुत किया। उन्होंने पाया कि वर्तमान महाद्वीपों को मिलाकर एक भौगोलिक एकरूपता दी जा सकती है। उन्होंने इसे साम्य स्थापना (Jig-saw-fit) कहा। उनके अनुसार, कार्बोनीफेरस युग में पृथ्वी के सभी स्थलखंड आपस में जुड़े हुए थे। इस वृहत महाद्वीप को उन्होंने 'पैंजिया' नाम दिया। इसके चारों ओर एक वृहत महासागर का विस्तार था जिसे 'पैंथालासा' कहा गया। अंतिम-ट्रियासिक युग में 'पैंजिया' का विभाजन प्रारम्भ हुआ एवं इसका एक भाग उत्तर की ओर तथा दूसरा भाग दक्षिण की ओर प्रवाहित हुआ। उत्तरी भाग लॉरेशिया (अंगारालैंड) तथा दक्षिणी भाग गोंडवानालैंड कहलाया। इन दोनों स्थलीय भागों के बीच एक उथला व संकीर्ण महासागर खुला जिसे 'टेथिस सागर' कहते हैं। लगभग 6.5 करोड़ वर्ष पूर्व अंतिम-क्रिटेशियस युग में गोंडवानालैंड मे विभंजन के फलस्वरूप द. अमेरिका, अफ्रीका, प्रायद्वीपीय भारत, मेडागास्कर तथा आस्ट्रेलिया का निर्माण हुआ। प्रायद्वीपीय भारत के उत्तर की ओर प्रवाहित होने के कारण हिन्द महासागर खुला। अंगारालैंड टूटकर उ. अमेरिका, यूरोप तथा एशिया बना। दोनों अमेरिका के पश्चिम की ओर प्रवाहित होने के कारण अटलांटिक महासागर निर्मित हुआ। इसी विस्थापन के कारण उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी भाग में रॉकी और एंडीज पर्वत का निर्माण हुआ। इसी तरह अफ्रीका तथा प्रायद्वीपीय भारत के उत्तर की ओर विस्थापन के कारण हिमालय तथा अन्य अल्पाइन पर्वतों का निर्माण हुआ। पैंजिया तथा पैंथालासा का अवशिष्ट भाग आज क्रमशः अंटार्कटिका तथा प्रशान्त महासागर के रूप में मौजूद है। वेगनर के अनुसार पैंजिया के टूटने का कारण गुरूत्व बल, प्लवनशीलता (force of buoyancy) तथा ज्वारीय बल (Tidel force) हैं।

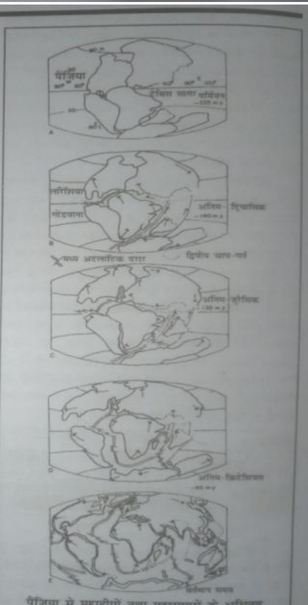

पैंजिया से महाद्वीपों तथा महासागरों के अभिनव स्वरूप का विकास

वेगनर के द्वारा प्रतिपादित महाद्वीपीय विस्थापन के संबंध में अनेक प्रमाण हैं। भौगोलिक साम्यरूपता (jig-saw-fit), ग्लोसोप्टिरस वनस्पतियों के अवशेषों का भारत, मेडागास्कर, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया व अंटार्कटिका के अलग-अलग जलवायु प्रदेशों में पाया जाना, छोटानागपुर के पठार में हिमोढ़ों का मिलना, डायनासोर व लेमिंग मछली के जीवाश्मों का कनाडा में पाया जाना, ब्राजील के डिलामेयर पर्वत व अंगोला के प्री-कैम्ब्रियन पर्वतों का एक सीध में व एक काल में निर्मित होना, एक ही प्रकार के भूगर्भिक संरचना व उससे संबद्ध खनिजों का भिन्न-भिन्न महाद्वीपों में पाया जाना वेगनर के सिद्धांत की मौलिकता का प्रमाण है। यद्यपि उनके द्वारा महाद्वीपीय विस्थापन हेतु विवेचित बल अपर्याप्त रहे हैं परंतु उनके द्वारा दिए गए विभिन्न प्रमाण 1960 के दशक में प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धांत के विकास का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक रहा है।

प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत (Plate Tectonic Theory): यह सिद्धांत वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत का विकास माना जाता है। पुराचुम्बकत्व व सागर-नितल-प्रसरण के प्रमाणों से यह स्पष्ट हो गया था कि सिर्फ महाद्वीप ही नहीं वरन् महासागरीय नितल में भी प्रसार होता है। उसके बाद यह संकल्पना विकसित हुई। इस सिद्धांत का प्रतिपादन 1962 ई. में हैरी हेस ने किया किन्तु इसकी वैज्ञानिक व्याख्या का श्रेय मोर्गन को दिया जाता है। मैकेन्जी, पार्कर तथा होम्स इस सिद्धांत के प्रमुख विचारक हैं। इस सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी की भू-पर्पटी अनेक छोटी-बड़ी प्लेटों में विभक्त है। ये प्लेटें 100 किमी. की मोटाई वाले स्थलमण्डल (लिथोस्फेयर) से निर्मित होती हैं एवं दुर्बलमण्डल (एस्थेनोस्फेयर) पर तैरती रहती हैं जो कि पूर्णतः SiMa का बना है व अपेक्षाकृत अधिक घनत्व का होता है। प्लेटीय संचलन का मुख्य कारण एस्थेनोस्फेयर में रेडियोसक्रिय पदार्थों की उपस्थिति के कारण तापीय संवहन तरंगों की चक्रीय प्रक्रिया का होना है, जिसके संबंध में होम्स ने व्याख्या दी है।

नासा (NASA) के अनुसार प्लेटों की संख्या 100 तक बताई गई है परन्तु अभी तक मात्र छः बड़ी तथा 20 छोटी प्लेटों को पहचाना गया है। छः बड़ी प्लेटें इस प्रकार हैं- (1) अमेरिकी प्लेट, (2) अफ्रीकी प्लेट, (3) यूरेशियाई प्लेट, (4) इंडो-आस्ट्रेलियन प्लेट, (5) प्रशांत प्लेट तथा (6) अंटार्कटिका प्लेट। छोटी प्लेटों में नासका प्लेट (पूर्वी प्रशांत प्लेट), कोकोस प्लेट, अरेबियन प्लेट, फिलीपाइन प्लेट, स्कोशिया प्लेट व कैरेबियन प्लेट, जुआन-डि-फ्यूका प्लेट, सोमाली प्लेट, बर्मी प्लेट आदि महत्वपूर्ण हैं। लिथोस्फेरिक प्लेटें पूर्णतः महासागरीय, पूर्णतः महाद्वीपीय या मिश्रित, तीनों प्रकार की हो सकती हैं। प्रशान्त प्लेट पूर्णतः महासागरीय है, जबकि अमेरिकन प्लेट मिश्रित प्रकार का है।

प्लेटों के किनारे ही भूगर्भिक क्रियाओं के दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इन्हीं किनारों के सहारे भूकम्पीय, ज्वालामुखीय तथा विवर्तनिक घटनाएँ घटित होती हैं। सामान्य रूप से प्लेटों के किनारों (Margins) को तीन प्रकारों में विभक्त किया गया है:-

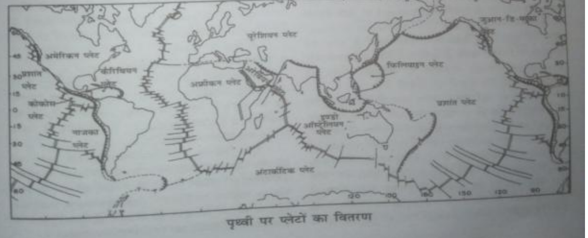

पृथ्वी पर प्लेटों का वितरण

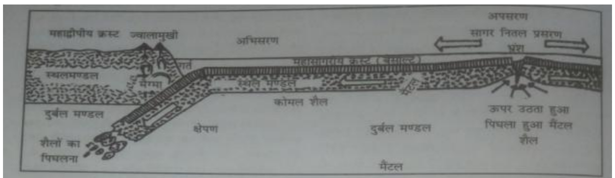

1. रचनात्मक किनारा (Constructive margin)

ये तापीय संवहन तरंगों के उपरिमुखी स्तंभों के ऊपर अवस्थित होते है। इसके कारण दो प्लेटें एक-दूसरे की विपरीत दिशा में गतिशील होते हैं एवं दोनों के मध्य एक भ्रंश दरार पड़ जाती है जिसके सहारे एस्थेनोस्फेयर का मैग्मा ऊपर आता है और ठोस होकर नवीन भू-पर्पटी का निर्माण करता है। अतः इन प्लेट किनारों को 'रचनात्मक किनारा' कहते हैं तथा इस तरह की प्लेटें 'अपसारी प्लेटें' कहलाती हैं। इस तरह की घटनाएँ मध्य महासागरीय कटकों के सहारे घटित होती है। मध्य अटलांटिक कटक इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

2. विनाशात्मक किनारा (Destructive margin)

ये तापीय संवहन तरंगों के अधोमुखी स्तंभों के ऊपर अवस्थित होते है। इससे दो प्लेटें अभिसरित होती हैं एवं आपस में टकराती हैं। इस प्रक्रिया में अधिक घनत्व की प्लेट कम घनत्व की प्लेट के नीचे क्षेपित (Subduct) हो जाती है। इस क्षेत्र को बेनी मेखला या बेनी ऑफ जोन (Beni off Zone) कहते हैं। चूंकि यहाँ प्लेट का विनाश होता है अतः इसे विनाशात्मक किनारा कहते हैं तथा ऐसी प्लेटें अभिसारी प्लेट (Converging Plate) कहलाती हैं। अभिसारी प्लेट की अंतःक्रिया की तीन दशाएँ हो सकती हैं:

(i) **जब एक अभिसारी प्लेट महाद्वीपीय व दूसरा महासागरीय हों** तो महासागरीय प्लेट अधिक भारी होने के कारण महाद्वीपीय प्लेट के नीचे क्षेपित हो जाती है, जिससे गर्त का निर्माण होता है एवं उसमें अवसादों के निरंतर जमाव व वलन से मोड़दार पर्वतों का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए रॉकी व एंडीज पर्वत। बेनी ऑफ जोन (Beni off Zone) में पिघला हुआ मैग्मा ही भू-पर्पटी को तोड़ते हुए ज्वालामुखी का निर्माण करती है। उदाहरण के लिए अमेरिकी प्लेट का पश्चिमी किनारा जहाँ पर्वतों का निर्माण हुआ है, ज्वालामुखी उद्‌गार देखने को मिलती है। एंडीज के आंतरिक भागों में कोटोपैक्सी व चिंबाराजो जैसे ज्वालामुखी का पाया जाना इसी अंतःक्रिया द्वारा समझा जा सकता है।

(ii) **जब दोनों प्लेट महासागरीय हों** तो अपेक्षाकृत बड़े व भारी प्लेट का धंसाव होता है एवं महासागरीय गर्तों व ज्वालामुखी द्वीपों की एक श्रृंखला-सी बन जाती है। प्रशांत प्लेट व जापान सागर प्लेट या फिलीपींस प्लेट की अभिसरण क्रिया के द्वारा इसे समझा जा सकता है।

(iii) **जब दोनों प्लेटें महाद्वीपीय हों** तो बेनी ऑफ जोन क्षेत्र में क्षेपण इतना प्रभावी नहीं हो पाता कि ज्वालामुखी उत्पन्न हो सके। परन्तु ये क्षेत्र भूगर्भिक रूप से अस्थिर क्षेत्र होते हैं एवं यहाँ बड़े मोड़दार पर्वतों का निर्माण होता है। यूरेशियन प्लेट व इंडियन प्लेट के टकराने से टेथिस भूसन्नति के अवसादों के वलन व प्लेटीय किनारों के मुड़ाव से उत्पन्न हिमालय पर्वत का उदाहरण इस संदर्भ में दिया जा सकता है।

3. संरक्षी किनारा (conservative margin)

जब दो प्लेटें एक दूसरे के समानान्तर खिसकती हैं तो उनमें कोई अन्तर्क्रिया नहीं हो पाती, अतः इसे 'संरक्षी किनारा' कहते हैं। यहाँ रूपांतर भ्रंश (Transform fault) का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए कैलिफोर्निया के निकट निर्मित सान एंड्रियास फॉल्ट।

टूजो-विल्सन द्वारा माइक्रोप्लेट्स व हॉट प्लम्स की संकल्पना जोड़े जाने के बाद प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत भू-गर्भिक गतिविधियों को समझने में और भी उपयोगी बन गया है। इससे प्लेट के आंतरिक भागों में होने वाली भूकंपीय व ज्वालामुखीय घटनाओं की व्याख्या संभव हुई है। साथ ही ज्वालामुखियों के सक्रियता व निष्क्रियता का स्पष्टीकरण भी हो सका है।

अन्तर्जात बल

भू-दृश्यों का विकास

पृथ्वी की सतह पर दो प्रकार के बल कार्य करते हैं:- अन्तर्जात और बहिर्जात। अन्तर्जात बल (पटलविरूपणी बल, ज्वालामुखी क्रिया, भूकम्प आदि) भूतल पर विषमताओं का सृजन करते हैं। बहिर्जात बल (बहता जल, सागरीय तरंग, हिमानी, भूमिगत जल, पवन आदि) समतल स्थापक बल होते हैं। पृथ्वी पर स्थित ऊँची भूमि (पर्वत, पठार, मैदान आदि) तथा धँसी हुई भूमि (झील, गर्त आदि) में एक भौतिक संतुलन की दशा होती है जो समस्थिति (Isostasy) कहलाती है। ये सभी एक प्राकृतिक नियम के अनुरूप संतुलित हैं। सर्वप्रथम एयरी व प्राट महोदय ने इस नियम की व्याख्या की थी।

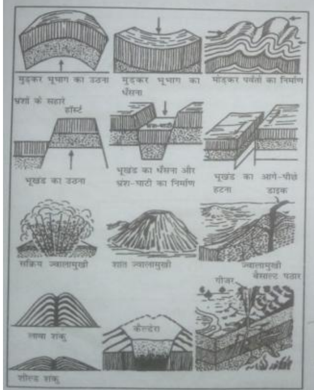

भूगर्भीय शक्तियों के कार्य और उनसे बनी प्रमुख स्थलाकृतियाँ

अंतर्जात बलों को कार्य की तीव्रता के आधार पर दीर्घकालिक व आकस्मिक दो प्रकारों में बांटा गया है। दीर्घकालिक संचलन को पटलविरूपणी बल (Diastrophic Forces) भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत लंबवत (Vertical) तथा क्षैतिज (Horizontal) संचलन आते हैं। इन्हें क्रमशः महाद्वीप निर्माणकारी (Epeirogenic Movement) तथा पर्वत निर्माणकारी (Orogenic Movement) कहा जाता है। लंबवत संचलन भी दो प्रकार के हो सकते हैं–उपरिमुखी (Upward) व अधोमुखी (Downward)। उत्थित पुलिन, उत्थित स्थलखंड (भारत में कच्छ की खाड़ी के निकट लगभग 24 किमी. लंबी भूमि कई किलोमीटर ऊपर उठ गई है, जिसे अल्लाह का बांध कहते हैं) आदि उपरिमुखी संचलन के एवं इंग्लैंड व स्कॉटलैंड में समुद्र तल से सैकड़ों मीटर नीचे कोयले की खुदाई, मुम्बई के प्रिंस डॉक क्षेत्र के जलमग्न वन आदि अधोमुखी संचलन के उदाहरण हैं।

क्षैतिज संचलन में दो प्रकार के बल कार्य करते हैं–संपीडन बल (Forces of compression) व तनाव बल (Forces of tension)। संपीडन बल से चट्टानों की परतें मुड़ जाती हैं। ऊपर उठे भाग को अपनति (Anticline) और धँसे हुए भाग को अभिनति (Syncline) कहते हैं। संपीडन बल की भिन्नता के कारण वलन (Folding) के प्रकारों में भी अंतर मिलता है।

विभिन्न प्रकार के वलन

1. सम्मिलित वलन (Symmetrical fold)
   उदा.- स्विट्जरलैंड का जूरा पर्वत
2. असममित वलन (Asymmetrical fold)
   उदा.- ब्रिटेन का दक्षिण पेनाइन पर्वत
3. एकनतिवलन (Monoclinal fold)
   उदा. -आस्ट्रेलिया का ग्रेट डिवाइडिंग रेंज
4. अधिवलन (Over fold)
   उदा.- भारत की पीरपंजाल श्रेणी
5. समनत वलन (Isoclinal fold)
   उदा. -पाकिस्तान का कालाचित्ता पर्वत
6. परिवलन (Recumbent fold)
   उदा.- ब्रिटेन का कैरिक कैसल पर्वत
7. अधिक्षिप्त वलन (Overthrust fold)
   उदा. -कश्मीर की पीरपंजाल श्रृंखला व गढ़वाल हिमालय

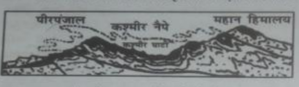

ग्रीवाखंड पर कश्मीर की स्थिति

जब परिवलित मोड़ की एक भुजा टूटकर बहुत दूर अलग जा गिरती है और अन्य प्रकार की चट्टानों पर चढ़ जाती है तो उसे ग्रीवाखंड (नैपे) कहते हैं। कश्मीर घाटी एक ग्रीवाखंड पर ही अवस्थित है।

पंखाकार वलन (Fan Fold): विभिन्न स्थानों पर संपीडन की भिन्नता के कारण कभी-कभी एक वृहत अपनति में कई छोटी-छोटी अपनतियाँ व अभिनतियाँ मिलती है। ऐसी आकृति को समपनति (Anticlinorium) कहते हैं। इसी तरह जब असामान्य संपीडन के कारण एक वृहत् अभिनति के अंतर्गत कई छोटी-छोटी अपनतियाँ व अभिनतियाँ बन जाती है तो उस वृहत् अभिनति को समभिनति (synclinorium) कहा जाता है। इन दोनों स्थलाकृतियों को पंखाकार वलन भी कहते है।

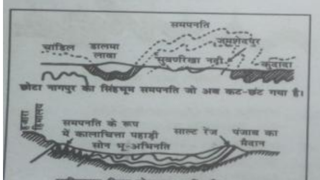

भ्रंशन (Fault): इसके अंतर्गत दरारें (Cracks) विभंग (Fracture) व भ्रंशन (Faulting) को शामिल किया जाता है। भ्रंशन की उत्पत्ति क्षैतिज संचलन के दोनों बलों (संपीडन व तनाव बल) से होती है परन्तु तनाव बल का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। अधिकतर भ्रंश इसी के कारण उत्पन्न हुए है। सामान्य भ्रंश का निर्माण तनाव बल के कारण होता है। इसमें दरार के दोनों ओर के भूखंड एक दूसरे के विपरीत दिशा में खिसकते हैं एवं एक खंड नीचे की ओर गिर जाता है। सामान्य भ्रंश से भू-पटल में प्रसार होता है। उत्क्रम भ्रंश संपीडन के कारण निर्मित होते हैं। इस भ्रंश में दबाव के कारण दरार के दोनों ओर के भू-खंड एक दूसरे की ओर खिसकते हैं एवं एक दूसरे के ऊपर आरूढ़ हो जाते हैं। इसमें सतह का फैलाव पहले की तुलना में घट जाता है। इसे आरूढ़ भ्रंश (Thrust Fault) भी कहा जाता है। उपर्युक्त दोनों भ्रंशों के द्वारा कगारों (Escarpments) का निर्माण होता है जिसके सहारे लटकती घाटी एवं जलप्रपातों का भी विकास होता है। उदाहरण के लिए पश्चिमी घाट कगार, विंध्यन कगार क्षेत्र में ऐसा देखा जा सकता है।

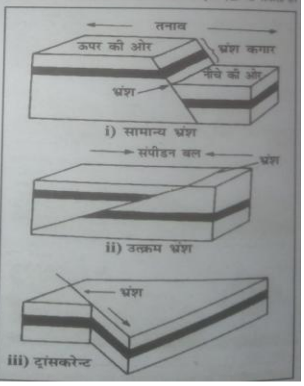

जब किसी क्षेत्र में एक-दूसरे के समानांतर अनेक भ्रंश होते हैं एवं सभी भ्रंश तलों की ढाल एक ही दिशा में होती है, तो इसे सोपानी भ्रंश कहा जाता है। यूरोप की राइन घाटी सोपानी भ्रंशों पर ही स्थित है। जब स्थल पर दो विपरीत दिशाओं से दबाव पड़ता है तो दोनों ओर के भू-खंड भ्रंश तल के सहारे धंसने या ऊपर उठने के स्थान पर आगे-पीछे खिसके हुए होते हैं। इस प्रकार के भ्रंश को ट्रांसकरेन्ट भ्रंश (Transcurrent or Strike-slip fault) कहा जाता है। कैलिफोर्निया के सान एंड्रियास भ्रंश का निर्माण इसी प्रकार हुआ है। हिमालय के गढ़वाल व उत्तरकाशी क्षेत्र में भी ऐसे भ्रंश देखने को मिलते हैं। भ्रंशों के निर्माण के कारण कई स्थलाकृतियाँ निर्मित होती है। जैसे -भ्रंश कगार, भ्रंश घाटी, रैम्प घाटी, भ्रंशोत्थ पर्वत व हार्स्ट पर्वत।

भ्रंश घाटी (Rift Valley) का विकास तब होता है। जब दो भ्रंश रेखाओं के बीच का चट्टानी स्तंभ नीचे की ओर धंस जाता है। जब तनाव जनित बल के कारण दो भू-खंडों का विपरीत दिशा में खिसकाव होता है तब इनका निर्माण होता है। भ्रंश घाटियाँ लम्बी, संकरी व गहरी होती है। इन्हें जर्मन भाषा में ग्राबेन (Graben) कहा जाता है। जॉर्डन की प्रसिद्ध भ्रंश घाटी में ही मृत सागर स्थित है जो समुद्र तल से भी अधिक नीचा है। अफ्रीका में न्यासा, रूडोल्फ, टांगानिका, अल्बर्ट व एडवर्ड झीलें भू-भ्रंश घाटी में ही स्थित हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में कैलिफोर्निया क्षेत्र में स्थित मृत घाटी (Death Valley) भी भू-भ्रंश घाटी है। यह समुद्र तल से भी नीची है। स्कॉटलैंड की मध्यवर्ती घाटी, दक्षिण आस्ट्रेलिया की स्पेन्सर खाड़ी, भारत की नर्मदा, ताप्ती एवं ऊपरी दामोदर नदी घाटियाँ भी भ्रंश घाटियों के प्रमुख उदाहरण हैं।

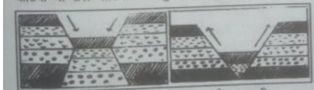

भ्रंश घाटी — रैम्प घाटी

रैम्प घाटी (Ramp Valley) का निर्माण उस स्थिति में होता है जबकि दो भ्रंश रेखाओं के बीच का स्तंभ यथास्थिति में ही रहे परंतु संपीडनात्मक बल के कारण किनारे के दोनों स्तंभ ऊपर उठ जाएं। असम की ब्रह्मपुत्र घाटी रैम्प घाटी का प्रमुख उदाहरण है।

जब दो भ्रंशों के बीच का स्तंभ यथावत रहे एवं किनारे के स्तंभ नीचे धंस जाए तो **ब्लॉक पर्वत** (Block Mountain) का निर्माण होता है। भारत का सतपुड़ा पर्वत, जर्मनी का ब्लैक फॉरेस्ट व वास्जेज पर्वत, संयुक्त राज्य अमेरिका का वासाच रेंज व सियरा नेवादा तथा पाकिस्तान का साल्ट रेंज ब्लॉक पर्वतों के प्रमुख उदाहरण हैं। सियरा नेवादा विश्व का सबसे विस्तृत ब्लॉक पर्वत है।

ब्लॉक पर्वत — हॉर्ज पर्वत

जब दो भ्रंशों के किनारों के स्तंभ यथावत रहे एवं बीच का स्तंभ ऊपर उठ जाए तो **हॉर्स्ट पर्वत** (Horst Mountain) का निर्माण होता है। जर्मनी का हॉर्ज पर्वत इस प्रकार के पर्वत का प्रमुख उदाहरण है। वस्तुतः भ्रंश घाटी व रैम्प घाटी एवं ब्लॉक पर्वत व हॉर्स्ट पर्वत प्रायः एक से प्रतीत होते हैं। परंतु ये भूसंचलन की दृष्टि से अलग-अलग परिस्थितियों के परिणाम हैं।

भ्रंश घाटी में स्थित मृत सागर

सोपानी भ्रंशों की राइन घाटी

पर्वत उत्पत्ति के सिद्धांत

1. कोबर का भूसन्नति (Geosyncline) सिद्धांत

जर्मन भूगोलवेत्ता कोबर ने अपनी पुस्तक Der Bau der Erde में 1921 में अपना भूसन्नति सिद्धांत प्रतिपादित किया। कोबर के अनुसार जहाँ पर आज पर्वत हैं वहाँ पर पहले भूसन्नतियाँ थीं जिन्हें उन्होंने पर्वत निर्माण स्थल (Orogen) बताया। इन भूसन्नतियों के चारों ओर प्राचीन दृढ़ भूखण्ड थे जिन्हें उन्होंने क्रेटोजेन या अग्रदेश (Fore land) कहा। इन दृढ़खण्डों के अपरदन से प्राप्त मलबा [illegible] भूसन्नति में धीरे धीरे जमाव होता रहता है। जब भूसन्नति भर जाती है तो पृथ्वी के संकुचन से उत्पन्न क्षैतिज संचलन के कारण भूसन्नति के दोनों अग्रदेश एक दूसरे की ओर खिसकने लगते हैं फलस्वरूप (संपीडनात्मक बल के कारण) भूसन्नति के तलछट में सिकुड़न तथा मोड़ पड़ने लगता है जिस कारण मलबा वलित होकर पर्वत का रूप धारण कर लेता है। भूसन्नति के दोनों किनारों पर दो पर्वत श्रेणियों का निर्माण होता है जिन्हें कोबर ने रेन्डकेटेन (Randketten) कहा। [illegible] कम [illegible] होता है तो रेन्डकेटेन के मध्य एक क्षेत्र छूट जाता है जिसे इन्होंने [illegible] मध्यपिण्ड (median mass) कहा। उदाहरणार्थ- हिमालय के संदर्भ में कोबर ने टेथिस को भूसन्नति और उसके उत्तर में अंगारालैण्ड एवं द. में गोंडवानालैण्ड को अग्रदेश बताया। दोनों अग्रदेशों के आगे खिसकने से [illegible] मोड़ पड़ने से उनमें कुनलुन पर्वत तथा द. में हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई। दोनों के बीच तिब्बत का पठार मध्यपिण्ड के रूप में बचा रहा।

आलोचना- (1) उनका बताया पृथ्वी के संकुचन से उत्पन्न बल पर्वत निर्माण के लिए [illegible]
(2) कोबर ने बताया कि भूसन्नति के दोनों पार्श्व [illegible] एक पार्श्व [illegible]
3. पू.प. फैले पर्वतों की व्याख्या की जाती है परंतु उ.द. फैले पर्वतों का [illegible]

कोबर के भूसन्नति सिद्धांत द्वारा कुनलुन [illegible] तिब्बत के पठार [illegible]

भूसन्नति (Geosynclines) A.U

AP

भूसन्नतियाँ लम्बे, संकरे तथा उथले जलीय भाग होती हैं, जिनमें जलपरतीय निक्षेप के साथ साथ तली में धंसाव होता है।"

विशेषताएं- (1) ये उथले जलीय भाग होती हैं (2) इनमें तलछटीय जमाव होता रहता है (3) ये लम्बी किन्तु संकरी होती हैं (4) [illegible] (5) ये प्रायः दो दृढ़ भूखण्डों के बीच होती हैं।

भूसन्नति संकल्पना का विकास- (1) हाल तथा डाना की संकल्पना- डाना- "भूसन्नतियाँ, लम्बे, संकरे [illegible] हाल - निक्षेप के कारण भूसन्नति तली में धंसाव होता रहता है। परंतु [illegible] की गहराई में परिवर्तन नहीं होता है।

(2) हाग की संकल्पना- हाग ने बताया कि जहाँ पर आज पर्वत पाये जाते हैं वहाँ पर पहले सागरीय भागों का विस्तार था। भूसन्नतियाँ [illegible] का भाग होती हैं, जिनकी लम्बाई चौड़ाई से अधिक होती है। भूसन्नतियों की स्थितियां प्राचीन दृढ़ भूखण्डों के बीच [illegible] के रूप में थी। मेसोजोइक काल में 5 प्राचीन दृढ़ भूखण्ड थे- (1) उ. अटलांटिक मास (2) [illegible] (3) अफ्रीका-ब्राजील मास (4) आस्ट्रेलिया-इंडिया-मेडागास्कर मास (5) पैसिफिक मास। इनके बीच निम्न भूसन्नतियों के नाम [illegible] (1) [illegible] 2. यूराल भूसन्नति (3) टेथिस भूसन्नति (4) परिप्रशांत भूसन्नति।

भूसन्नति में अवसादों का जमाव होता रहता है। जब भूसन्नति के पार्श्व भागों से दबाव पड़ता है तो भूसन्नति के तलछट में मरोड़ होने से वलन की क्रिया होने लगती है तथा [illegible] वलित पर्वतों का निर्माण होने लगता है।

(3) ईवांस ने बताया- कि भूसन्नतियों में इतने निक्षेप पाये जाते हैं कि उनका एक निश्चित [illegible] स्थिति बताना [illegible] है। भूसन्नतियों [illegible] सा भी हो लेकिन उसमें सतत तलछटीय निक्षेप होता रहता है [illegible] उसकी तली का धँसाव होता जाता है [illegible] तलछट में दबाव के कारण संपीडन होने लगता है और वलित पर्वतों का निर्माण होता है।

(4) [illegible] की संकल्पना:- विषमताओं के आधार पर उन्होंने भूसन्नतियों को तीन वर्गों में विभाजित किया है।

Mono geo.

अ- एकल भूसन्नति:- इनमें भूसन्नति का केवल एक ही चक्र पाया जाता है [illegible] संकीर्ण लम्बी जलीय भाग जी [illegible] के निरंतर धँसाव होता रहा। अप्लेशियन भूसन्नति इसका प्रमुख उदाहरण है।

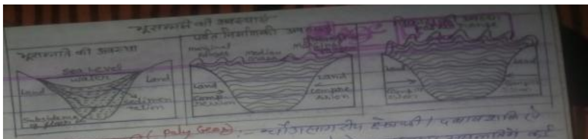

(च) बहुल भूसन्नति (Poly Geosyn) :- भूमध्यसागरीय [illegible] दबाव शक्ति से उत्पन्न संपीडन के कारण तलछट में बलन पड़ने के फलस्वरूप भूसन्नतियों का निर्माण हुआ। [illegible] समानांतर भूअपनतियों का निर्माण [illegible]

(ङ) मध्यस्थ Meso भूसन्नति :- ये अत्यधिक लम्बे [illegible] के रूप में [illegible] चारों तरफ से महाद्वीपों से आकर [illegible] अर्थात कई बार विशेष अवतलन तथा [illegible] जिससे आल्पस तथा हिमालय पर्वतों का निर्माण हुआ [illegible]

(5) आर्थर होम्स की संकल्पना — होम्स ने बताया कि भूसन्नति [illegible] भूगर्भिक शक्तियों द्वारा होता है। [illegible] धीमा तलछटीय भार से [illegible] अनुसार भिन्न रूपों में भूसन्नतियों का आविर्भाव तथा विकास होता है।

(1) मैग्मा का स्थानांतरण — महाद्वीपीय परत के नीचे से मैग्मा के स्थानांतरित हो जाने से धँसाव होने लगता है तथा भूसन्नतियों का निर्माण होता है। [illegible] उदाहरण [illegible]

(2) रूपांतरण द्वारा — जहाँ पर दो संवहनीय धाराएं धरातल के नीचे मिलती हैं वहाँ पर संपीडन होने के कारण निचली परत में चट्टानों का कायांतरण होने लगता है जिसके कारण उनका घनत्व बढ़ जाता है फलस्वरूप निचली परत में अवतलन होता है तथा उस स्थान पर भूसन्नति का निर्माण होता है। [illegible] उदाहरण है।

(3) संपीडन द्वारा — बड़े बड़े पर्वतों के निर्माण के समय अग्रदेश की तरफ पर्वतों के सामने दबाव की शक्तियों द्वारा [illegible] भाग नीचे धँस जाता है [illegible] भूसन्नति का निर्माण होता है। [illegible]

(4) [illegible] परत का पतला होने से — जब महाद्वीपीय धरातल के नीचे दो [illegible] विपरीत दिशा में प्रवाहित होती हैं तो दो [illegible] [illegible] भूसन्नति का निर्माण होता है। [illegible] भूसन्नति का निर्माण होता है। जैसे - यूराल।

(6) डस्टर महोदय — ने पर्वत श्रेणियों की रचना के आधार पर भूसन्नतियों को [illegible]

क. अंतर्महाद्वीपीय भूसन्नति :- यह भूसन्नति [illegible] महाद्वीपों का [illegible] बीच पायी जाती है। जैसे - यूराल भूसन्नति।

(ख) परिमहाद्वीपीय भूसन्नति :- ये महाद्वीपों के किनारे वाले भागों में पायी जाती हैं। [illegible]

(ग) परिसागरीय भूसन्नति :- सागर तल के [illegible] किनारों के सहारे पायी जाती हैं।

भूसन्नति की अवस्थाएं —

वलित पर्वतों की उत्पत्ति भूसन्नतियों से मानी जाती है। इसलिए भूसन्नतियों को पर्वतों का पालना (Cradle of mountains) कहा जाता है। इनके विकास को 3 अवस्थाओं में [illegible]

1. भूसन्नति (Lithogenesis) अवस्था :- यह पर्वत निर्माण एवं भूसन्नति की प्रारंभिक अवस्था है। इसमें भूसन्नति की उत्पत्ति होती है जिसमें नदियों द्वारा लाये अवसादों का जमाव होता है। अवसादन के भार से पेंदी तथा तली का अवतलन होता है।

2. पर्वतनिर्माण की (Orogenesis) अवस्था :- भूसन्नति में अवसाद का निक्षेप एक सीमा तक ही होता है। इसके बाद संतुलन स्थापित करने के लिए [illegible] हलचल एवं तनाव तथा संपीडन होने लगता है। भूसन्नति के तलछट में वलन पड़ने लगते हैं और मोड़दार पर्वत श्रेणियों का निर्माण होता है।

3. विकास की अवस्था :- पर्वत निर्माण प्रक्रिया लम्बी है। अतः इसका उत्थान धीरे-धीरे होता है। हिमालय का विकास इओसीन युग से [illegible] युग तक होता रहा है तथा अब भी इसके ऊपर उठने के प्रमाण मिले हैं। पर्वतों के निर्माण के साथ ही उन पर अनाच्छादन की क्रिया प्रारंभ हो जाती है जिससे पर्वतों की ऊँचाई कम होने लगती है और उनके विशिष्ट आकारों का निर्माण हो जाता है। कभी कभी ऊँचाई में कमी के कारण तथा [illegible] भार में अधिकता के कारण पर्वतीय संतुलन की स्थापना के लिए पर्वत का भाग ऊपर उठने लगता है। यह अवस्था भूसन्नति तथा पर्वत विकास की अवस्था कहलाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कोई एक निष्कर्ष निकालना कठिन है, क्योंकि विद्वानों में मतभेद बना हुआ है किंतु यह एकमत से स्वीकार किया गया है कि इन भूसन्नतियों का अस्तित्व प्राचीन समय से रहा है तथा वलित पर्वतों की उत्पत्ति इन्हीं से हुई है।

बहिर्जात बल

बहिर्जात बल का भूपटल पर प्रमुख कार्य अनाच्छादन (Denudation) होता है। इसके अन्तर्गत अपक्षय तथा अपरदन की सम्मिलित क्रिया होती है। अपक्षय में स्थैतिक क्रिया होती है जबकि अपरदन में गतिशील क्रिया होती है। भौतिक अपक्षय को विघटन एवं रासायनिक अपक्षय को वियोजन कहते हैं। उष्ण कटिबंधीय आर्द्र भागों में रासायनिक अपक्षय होता है जबकि उष्ण व शुष्क मरुस्थलीय भागों में भौतिक अपक्षय होता है। ये सभी क्रियाएँ जो धरातल को सामान्य तल पर लाने का प्रयास करती हैं, उन्हें 'प्रवणता संतुलन की प्रक्रियाएँ' कहते हैं। बाह्य कारकों द्वारा स्थलीय धरातल के अपरदन को निम्नीकरण (Degradation) कहते हैं। धरातल के नीची जगहों को भरकर ऊँचा करना अधिवृद्धि (Aggradation) कहलाता है।

अपक्षय एवं अपरदन

अपक्षय (Weathering):- चट्टानों के अपने ही स्थान पर कमजोर होने, टूटने, सड़ने तथा विखंडित होने को 'अपक्षय' कहते हैं। जैसे ही चट्टान धरातल पर अनावृत होकर मौसमी प्रभावों से प्रभावित होते हैं, यह प्रक्रिया शुरू हो जाती है। कारकों के आधार पर अपक्षय को तीन प्रकार में बांटा जाता है:-

(क) भौतिक या यांत्रिक अपक्षय (Physical or Mechanical Weathering)

(i) ताप के कारण छोटे-बड़े टुकड़ों में विघटन
(ii) तुषार-चीरण अर्थात चट्टानों में जल-प्रवेश
(iii) घर्षण
(iv) दबाव

(ख) रासायनिक अपक्षय (Chemical Weathering)

(i) आक्सीकरण (Oxidation)
(ii) कार्बोनेटीकरण (Carbonation)
(iii) जलयोजन (Hydration)

(ग) प्राणिवर्गीय अपक्षय (Biological Weathering)

(i) वानस्पतिक (Plants) अपक्षय
(ii) जैविक (Animal) अपक्षय
(iii) मानवीय क्रियाएँ (Human activities)

अपरदन (Erosion) :- अपक्षयित पदार्थों का अन्यत्र स्थानान्तरण ही 'अपरदन' कहलाता है। अपरदन में भाग लेनेवाली प्रमुख प्रक्रियाएँ इस प्रकार हैं:-

(1) अपघर्षण (Abrasion) : जब कोई प्रक्रम अपने साथ पत्थर, कंकड़, बालू आदि पदार्थों को लेकर आगे बढ़ती है तो इन पदार्थों के सम्पर्क में आनेवाली चट्टानों के क्षरण को अपघर्षण कहते हैं।

(2) सन्निघर्षण (Attrition) : किसी प्रक्रम के साथ बहनेवाले पदार्थों के आपस में टकराकर छोटा होने की प्रक्रिया को सन्निघर्षण कहते हैं।

(3) घोलन या संक्षारण (Corosion) : घुलनशील चट्टानों यथा-डोलोमाइट, चूना पत्थर आदि का जलक्रिया द्वारा घुलकर शैल से अलग होना संक्षारण कहलाता है। यह भूमिगत जल तथा बहते जल द्वारा होता है। इससे कार्स्ट स्थलाकृतियों का निर्माण होता है।

(4) जलगति क्रिया (Hydraulic action): जब जल की तीव्र गति के कारण चट्टान टूट-फूटकर अलग हो जाते हैं तो उसे जलगति क्रिया कहते हैं। यह सागरीय तरंगो, एवं नदी द्वारा होता है।

(5) जलदाब क्रिया (Water Pressure): जब किसी चट्टान में जल के दबाव के कारण अपरदन की क्रिया होती है तो उसे जलदाब क्रिया कहा जाता है। यह मुख्यत: सागरीय तरंगों द्वारा होता है।

(6) उत्पाटन (Plucking): यह हिमानियों द्वारा होता है। यह अपने प्रवाह-मार्ग की चट्टानों को तोड़ते हुए आगे बढ़ती है। इस प्रक्रिया को ही उत्पाटन कहा जाता है।

(7) अपवहन (deflation): यह पवन के द्वारा शुष्क या अर्द्धशुष्क प्रदेशों में अवसादों के उड़ाव किया है।

अपरदन चक्र

अपरदन चक्र बहिर्जात व अंतर्जात बलों का सम्मिलित परिणाम होता है। अंतर्जात बल (पटल विरूपणी बल, ज्वालामुखी क्रिया, भूकम्प आदि) धरातल पर विषमताओं का सृजन करते हैं। धरातलीय उत्थान द्वारा पर्वत, पठार, पहाड़ियाँ एवं धरातलीय अवतलन द्वारा झील, खाइयाँ, गर्त आदि का निर्माण होता है। जैसे ही धरातल में उत्थान द्वारा विषमताओं का सृजन होता है, बहिर्जात बल समतल स्थापक बल के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर देते हैं एवं इनसे विशिष्ट स्थलाकृतियों का निर्माण होता है। सर्वप्रथम स्कॉटिश भूगर्भशास्त्री **जेम्स हटन** ने भू-आकृतियों के संदर्भ में 'एकरूपतावाद' की अवधारणा दी एवं बताया कि 'वर्तमान भूत की कुंजी है'। उन्होने कहा कि 'न आदि का पता है और न अंत का भविष्य'। उनकी एकरूपतावादी संकल्पना को उनके शिष्यों जॉन प्लेफेयर व सर चार्ल्स ल्येल ने आगे बढ़ाया। स.रा. अमेरिकी भूगोलवेत्ता विलियम मोरिस **डेविस** के अनुसार किसी भी स्थलाकृति के निर्माण व विकास का एक ऐतिहासिक क्रम होता है जिसके अंतर्गत उसे तरुण (Young), प्रौढ़ (Mature) एवं जीर्ण (Old) अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। उनकी इस विचारधारा पर डार्विन के 'जैविक विकासवादी अवधारणा' का प्रभाव है। डेविस ने बताया कि स्थलाकृतियाँ चट्टानों की **संरचना**, अपरदन के **प्रक्रमों** व समय की अवधि या विभिन्न **अवस्थाओं** का परिणाम होती हैं। इसे डेविस का त्रिकट (Trio of Davis) भी कहा जाता है। डेविस के अनुसार अपरदन चक्र समय की वह अवधि है, जिसमें एक उत्थित भूखंड अपरदन की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुए अंतत: एक समप्राय मैदान (Peneplain) में बदल जाता है, तथा इसमें कहीं-कहीं थोड़े उठे हुए भाग मोनाडनॉक के रूप में शेष बचे रहते हैं। जर्मनी के वाल्टर पेंक ने अपने भू-आकृतिक चक्र डेविस के त्वरित व अल्पावधि उत्थान की अवधारणा की आलोचना की है एवं उनकी अवस्था संकल्पना की आलोचना करते हुए, उन्होंने बताया है कि स्थलाकृतियाँ उत्थान तथा निम्नीकरण की दर तथा दोनों की प्रावस्थाओं के परस्पर संबंधों का प्रतिफल होती है। उन्होंने उठते हुए स्थल खंड का नाम प्राइमारम्प रखा एवं अपरदन के प्रक्रम से गुजरने के बाद स्थलाकृति का अंतिम परिणाम समप्राय मैदान के बदले इंड्रम्फ को बताया। एल.सी. किंग ने अर्द्धशुष्क प्रदेशों के लिए पेडीप्लेनेशन चक्र की संकल्पना दी है।

धरातल पर परिवर्तन लाने वाले बहिर्जात बल एवं उत्पन्न स्थलरूप

गतिशील शक्तियाँ	क्रियाएं	उत्पन्न स्थलरूप: अपरदनात्मक	उत्पन्न स्थलरूप: निक्षेपात्मक स्थलरूप
1. बहता हुआ जल या नदी (River)	अपघर्षण, घोलन, सन्निघर्षण, जलगति क्रिया	'V'-आकार की घाटी, 'I' आकार की घाटी (गार्ज एवं कैनयन), जलप्रपात एवं क्षिप्रिका, नदी विसर्प या मियांडर, संरचनात्मक सोपान, नदी वेदिका, समप्राय मैदान (पेनीप्लेन)	जलोढ़ पंख, जलोढ़ शंकु, प्राकृतिक तटबंध, बाढ़ का मैदान, डेल्टा
2. हिमानी या हिमनद (Glacier)	अपघर्षण, उत्पाटन	'U'-आकार की घाटी, लटकती या निलंबित घाटी, सर्क या हिमगह्वर, सर्क झील या टार्न, एरेट या तीक्ष्ण कटक, हार्न या गिरिश्रृंग, नुनाटक, श्रृंग व पुच्छ, भेड़पीठ शैल या रॉशमुटोने, हिमसोपान, फियोर्ड	हिमोढ़ या मोरेन, ड्रमलिन, एस्कर, केम, केम वेदिका, कैटिल एवं हम्मक, हिमजल अवक्षेप मैदान
3. पवन (Wind)	अपवाहन, अपघर्षण, सन्निघर्षण	अपवाह बेसिन या वात गर्त, इंसेलबर्ग, छत्रक शिला या मशरूम रॉक, भूस्तम्भ या डिमॉइसल, ज्यूगेन, यारडांग, ड्राइकांटर, जालीदार शिला, पवन पुल,	बालुका स्तूप, बरखान, सेफ, लूनेट, तारा स्तूप, ह्वेलबैक स्तूप, रेतमुक्त कारीडोर या गासी, लोयस, बजादा, प्लाया
4. सागरीय जल (Sea Water)	जलगति क्रिया, अपघर्षण क्रिया, सन्निघर्षण क्रिया, घुलन क्रिया, जलदाब क्रिया	तटीय क्लिफ, खाँच या दांत, तटीय कन्दरा, प्राकृतिक चिमनी या वात छिद्र, निवेशिका या ज्यों, प्राकृतिक मेहराब, चिमनी शैल, लघुनिवेशिका, तरंग, घर्षितवेदी, स्टैक	पुलीन या बीच, कस्पपुलीन, रोधिका, अपतट रोधिका, तटीय रोधिका, स्पिट या भूजिह्वा, लूप रोधिका, संयोजक रोधिका, छल्लेदार रोधिका, टोम्बोलो, रोधिका द्वीप
5. भूमिगत जल (Ground Water)	घुलनक्रिया, जलगति क्रिया, अपघर्षण, सन्निघर्षण	घोल रंध्र, विलयन रंध्र, डोलाइन, पोल्जे, युवाला, लैपीज, कंदराएं, प्राकृतिक पुल, धँसती निवेशिका, अंधी घाटी, कार्स्ट या घोल घाटी	स्टैलेक्टाइट, स्टैलेग्माइट, कंदरा स्तम्भ, ड्रिप स्टोन, स्पेलियोथेम, ग्लोबुलाइट, हैलेक्टाइट, हैलेग्माइट

समस्थिति (Isostasy)

"परिभ्रमण करती हुई पृथ्वी के ऊपर स्थित क्षेत्रों (पर्वत, पठार, मैदान) एवं गहराई में स्थित क्षेत्रों (समुद्र, झील) में भौतिक अथवा यांत्रिक स्थिरता की दशा को संतुलन कहते हैं।" Isostasy शब्द ग्रीक भाषा के isostasious = समस्थिति से बना है। संतुलन शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अमरीकन भूगर्भवेत्ता डटन ने 1889 में किया।

संतुलन सिद्धांत की खोज — सन 1859 ई. में सिंधु गंगा के मैदान के अक्षांशों के निर्धारण हेतु भूसर्वेक्षण भारत सरकार के सर्वेयर जनरल सर जार्ज एवरेस्ट के निर्देशन में हो रहा था। उस समय कल्याण तथा कल्याणपुर नामक दो स्थानों का अक्षांशीय माप त्रिभुजीकरण तथा खगोलीय विधि से लिया गया तो दोनों मापों में 5.236" का अंतर आ गया। जब दोनों मापों में अंतर आने का कारण पूछा गया तो पियरी महोदय ने हिमालय पर्वत की निकटता बताया। प्राट महोदय ने अंतर 15.885 [illegible] इस प्रकार संतुलन सिद्धांत का सूत्रपात हुआ तथा कई विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये जिनमें कुछ निम्नानुसार हैं।

(1) सर जार्ज एयरी की संकल्पना :- सर्वप्रथम उन्होंने बताया कि पृथ्वी की क्रस्ट अधिक घनत्व वाले अधःस्तर (substratum) में तैर रही है। इस प्रकार हिमालय भारी गाढ़ी मैग्मा में तैर रहा है। उन्होंने स्पष्ट किया कि जिस प्रकार एक नाव पानी पर तैरती है तथा उसका अधिकांश भाग जल में डूबा रहता है उसी प्रकार हिमालय भी अधिक घनत्व वाले मैग्मा में तैर रहा है तथा उसका अधिकांश भाग नीचे काफी गहराई तक व्याप्त है। संक्षेप में एयरी के मत को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि ऊँचे उठे भाग काफी गहराई तक अपनी लंबी जड़ से सबस्ट्रेटम के अधिक घनत्व वाले भाग को हटा देते हैं जिस कारण ऊँचे उठे भागों के नीचे काफी गहराई तक हल्के पदार्थ का विस्तार होता है। ऐसा पर्वतों के विषय में होता है। इस प्रकार ये संतुलित होकर पृथ्वी पर स्थित हैं।

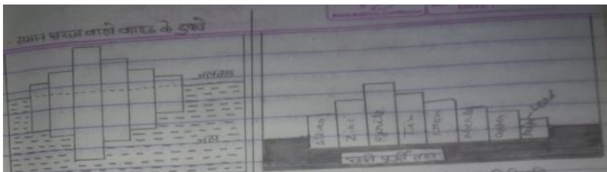

(2) प्राट की संकल्पना :- प्राट ने बताया कि ऊँचाई एवं घनत्व में उल्टा अनुपात होता है। उनके अनुसार एक क्षतिपूर्ति तल होता है जिसके ऊपर घनत्व में अंतर पाया जाता है तथा नीचे समान घनत्व होता है। एक स्तंभ में घनत्व नहीं बदलता है किंतु एक स्तंभ से दूसरे स्तंभ में घनत्व में अंतर पाया जाता है। इस प्रकार प्राट ने अपने मत "uniform depth with varying density" का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार पृथ्वी के विभिन्न उच्चावच इसलिए खड़े हैं क्योंकि उनके घनत्व में अंतर पाया जाता है परंतु इनका भार संतुलन रेखा के सहारे बराबर होता है।

(3) हेफोर्ड एवं बॉवी की संकल्पना :- हेफोर्ड के अनुसार भूपृष्ठ के नीचे असमान घनत्व के भाग विद्यमान हैं, परंतु धरातल के नीचे की तरफ कुछ गहराई में एक ऐसा तल है जिसके ऊपर घनत्व में अंतर होता है तथा नीचे की तरफ घनत्व समान होता है। इसे उन्होंने 'समतोल तल' (Level of Compensation) बताया है। इस तल के ऊपर ऊँचाई तथा घनत्व के साथ उल्टा अनुपात होता है। समतोल तल धरातल से [illegible] गहराई पर विद्यमान है। इस तल के ऊपर कम घनत्व वाले चट्टानी भागों की ऊँचाई अधिक तथा अधिक घनत्व वाले चट्टानी भागों की ऊँचाई कम होगी।

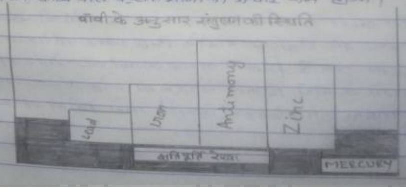

चित्र में आंतरिक मैदान, पठार, तटीय मैदान तथा तट से दूर स्थित भागों के चार स्तंभ हैं। इनकी ऊँचाई में पर्याप्त अंतर है किंतु इनका संतुलन घनत्व की भिन्नता से हो जाता है। इस प्रकार सभी स्तंभों का भार 'समतोल तल' पर बराबर है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि ऊँचाई तथा घनत्व में विलोम अनुपात है। जॉली ने एयरी तथा प्राट के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा बताया कि एयरी के अनुसार घनत्व विभिन्न स्तंभों में समान रहता है जबकि प्राट के अनुसार यह घनत्व बदलता रहता है।

(4) जोली की संकल्पना:— जोली ने 1925 में संतुलन सिद्धांत पर अपना मत प्रस्तुत किया। उनके अनुसार समान घनत्व वाले क्षेत्र के नीचे 10 मील मोटी परत होती है जिसके घनत्व में परिवर्तन पाया जाता है। इस दस मील मोटी परत में कम घनत्व वाले क्षेत्र नीचे तक हल्के पदार्थ वाले भूपृष्ठ के रूप में डूबे रहते हैं तथा अधिक घनत्व वाला भाग भारी पदार्थ से बना होता है।

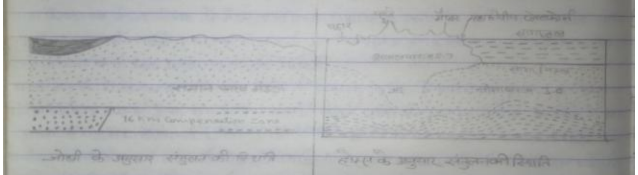

(5) आर्थर होम्स की संकल्पना:— होम्स का विचार एयरी के मत से पर्याप्त मेल खाता है। इनके अनुसार ऊँचे उठे भागों की रचना हल्के पदार्थ से होती है तथा उन्हें संतुलित रखने के लिए उनका अधिकांश भाग अधिक गहराई तक डूबा रहता है जिसका घनत्व काफी कम होता है। उन्होंने बताया कि पर्वतीय भागों के नीचे सियाल 40 km या उससे अधिक, सागर तल के निकट मैदान के नीचे 10 km, सामुद्रिक तलों के नीचे या तो होती ही नहीं या बिल्कुल कम होती है।

पृथ्वी के क्रस्ट में मिलनेवाले सभी प्रकार के मुलायम व कठोर पदार्थ 'चट्टान' कहे जाते हैं। इनका निर्माण विभिन्न प्रकार के खनिजों के सम्मिश्रण से हुआ है। यद्यपि पृथ्वी के क्रस्ट में तत्वों की संख्या 110 है किन्तु उसके लगभग 98% से भी अधिक भाग की संरचना में मात्र 8 प्रमुख चट्टान निर्माणकारी तत्वों का ही योगदान है। ये हैं- ऑक्सीजन (47%), सिलिकन (28%), एल्युमिनियम (8%), लोहा (5%), कैल्शियम, सोडियम, पोटैशियम तथा मैग्नीशियम। यद्यपि क्रस्ट में खनिजों की संख्या 2000 से भी अधिक है किन्तु कुल 24 खनिजों को ही 'चट्टान निर्माता खनिज' की संज्ञा दी जाती है क्योंकि अधिकांश चट्टानों का निर्माण इन्हीं से हुआ है। इनमें से भी मात्र 6 खनिज ही प्रधान रूप से पाए जाते हैं। इन खनिजों में फेल्सपार, क्वार्ट्ज (स्फटिक), पॉयरॉक्सींस, एम्फीबोल्स, अभ्रक तथा ओलीविन उल्लेखनीय हैं। चट्टान निर्माणकारी खनिज वर्गों में सिलिकेट (फेल्सपार, अभ्रक आदि) सर्वप्रमुख है एवं ऑक्साइड (कार्ट्ज, हेमाटाइट, मैग्नेटाइट आदि) तथा कार्बोनेट (कैल्साइट, डोलोमाइट आदि) का स्थान क्रमशः उसके बाद आता है।

निर्माण विधि के अनुसार चट्टानों के तीन वर्ग किए जा सकते हैं:-

1. **आग्नेय चट्टान (Igneous Rocks)**
2. **अवसादी चट्टान (Sedimentary Rocks)**
3. **रूपान्तरित चट्टान (Metamorphic Rocks)**

आग्नेय चट्टान : इसका निर्माण क्रस्ट के नीचे उपस्थित तप्त एवं तरल मैग्मा के ठंडा होने से होता है। आग्नेय चट्टान रवेदार होते हैं। इसे 'प्राथमिक चट्टान' भी कहते हैं क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति के पश्चात सर्वप्रथम इनका ही निर्माण हुआ था। अवसादी व रूपान्तरित चट्टान इसी से निर्मित होते हैं। इनमें परतें नहीं होती तथा जीवावशेष (Fossils) भी इनमें नहीं पाए जाते हैं। रासायनिक अपक्षय का इन चट्टानों पर प्रभाव कम पड़ता है किन्तु भौतिक व यांत्रिक अपक्षय का प्रभाव अधिक होता है, परिणामस्वरूप इन चट्टानों में विघटन (Disintegration) और वियोजन (Decomposition) होते हैं। क्रस्ट का लगभग 90% भाग आग्नेय चट्टानों से बना है।

स्थिति एवं संरचना के अनुसार आग्नेय चट्टानें दो प्रकार की हैं-

(क) अन्तः निर्मित आग्नेय चट्टान (Intrusive igneous rock) : जब मैग्मा सतह से नीचे ही ठंडा होकर ठोस रूप धारण कर ले तो आन्तरिक आग्नेय चट्टान का निर्माण होता है। इसके दो उपवर्ग हैं-

(a) पातालीय चट्टान (Plutonic Rock) : इसका निर्माण पृथ्वी के अंदर काफी अधिक गहराई पर होता है। इसका नामकरण 'प्लूटो' (यूनानी देवता) के नाम पर किया गया है जो पाताली देवता माने जाते हैं। अत्यधिक धीमी गति से ठंडा होने के कारण इसके रवे बड़े-बड़े होते हैं। 'ग्रेनाइट' चट्टान इसी का उदाहरण है।

(b) मध्यवर्ती चट्टानें (Hypobyssal Rock) : ज्वालामुखी उद्गार के समय धरातलीय अवरोध के कारण मैग्मा दरारों, छिद्रों एवं नली में ही जमकर ठोस रूप धारण कर लेता है। कालान्तर में अपरदन की क्रिया के उपरान्त ये चट्टानें धरातल पर नजर आने लगती हैं। डोलेराइट और मेग्नेटाइट इन चट्टानों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। इसके मुख्य रूप हैं- लैकोलिथ, फैकोलिथ, लोपोलिथ, बेथोलिथ, सिल, डाइक आदि।

(ख) बाह्य आग्नेय चट्टान (Extrusive igneous rock) : कभी-कभी मैग्मा भूपर्पटी के ऊपर आ जाता है तो तेजी से ठंडा होकर ठोस रूप धारण कर लेता है और बाह्य चट्टान का निर्माण करता है। इसे 'ज्वालामुखी चट्टान' भी कहते हैं। इन चट्टानों के रवे बहुत छोटे होते हैं। बैसाल्ट इसका अच्छा उदाहरण है। इस चट्टान के क्षरण से ही काली मिट्टी का निर्माण होता है जिसे 'रेगड़' (Regur) कहते हैं। रंध्रविहीन ग्लासी मैग्मा के अंतर्गत ऑब्सीडियन, प्यूमिस, परलाइट व पिच स्टोन आते हैं।

अवसादी चट्टान : पृथ्वी तल पर आग्नेय व रूपान्तरित चट्टानों के अपरदन व निक्षेपण के फलस्वरूप निर्मित चट्टानों को 'अवसादी चट्टान' कहते हैं। इन पुनर्निर्मित चट्टानों में परतों का विकास होने के कारण इन्हें 'प्रस्तरित या परतदार चट्टान' भी कहा जाता है। इनके निर्माण में जैविक अवशेषों का भी योगदान होता है। सम्पूर्ण क्रस्ट के लगभग 75% भाग पर अवसादी चट्टान विस्तृत है पर क्रस्ट के निर्माण में इसका योगदान मात्र 5% है।

अवसादी शैलों का संघटन

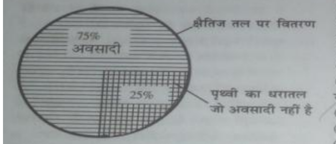

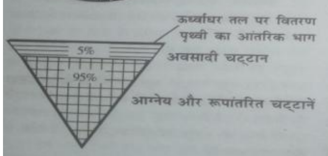

निर्माण में भाग लेनेवाले अवसादों के आधार पर अवसादी चट्टानों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है-

(क) यांत्रिक क्रियाओं द्वारा निर्मित अवसादी चट्टान, जैसे- बालुका पत्थर (Sand stone), कांग्लोमेरेट या गोलाश्म (Conglomerate), चीका मिट्टी (clay), शेल (Shale) तथा लोएस (Loess) आदि।

(ख) जैविक तत्वों से निर्मित अवसादी चट्टान, जैसे-चूना पत्थर (Lime stone), कोयला (Coal) तथा पीट (Peat) आदि।

(ग) रासायनिक तत्वों से निर्मित अवसादी चट्टान जैसे-खड़िया मिट्टी (Chalk), सेलखड़ी (Gypsum) तथा नमक की चट्टान (Salt Rock)।

3. रूपान्तरित चट्टान : ताप एवं दबाव के कारण आग्नेय तथा अवसादी चट्टानों के संगठन तथा स्वरूप में परिवर्तन या रूपान्तरण हो जाता है। इसे 'रूपान्तरित चट्टान' कहते हैं। यह सर्वाधिक कठोर चट्टान है तथा इसमें जीवाश्म नहीं मिलते।

अवसादी चट्टानों के रुपान्तरण से बनी शैलें-

(i)	शैल	–	स्लेट
(ii)	चूना पत्थर	–	संगमरमर
(iii)	चॉक एवं डोलोमाइट	–	संगमरमर
(iv)	बालुका पत्थर	–	क्वार्टजाइट
(v)	कांग्लोमेरेट	–	क्वार्टजाइट

आग्नेय चट्टानों के रूपान्तरण से बनी शैलें-

(i)	ग्रेनाइट	–	नीस
(ii)	बेसाल्ट	–	एम्फीबोलाइट
(iii)	बेसाल्ट	–	सिस्ट

रूपान्तरित चट्टानों के पुनः रूपान्तरण से बनी शैलें-

(i)	स्लेट	–	फाइलाइट
(ii)	फाइलाइट	–	सिस्ट
(iii)	गैब्रो	–	सरपेंटाइन

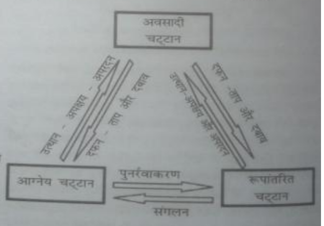

चट्टान चक्र

ढाल Slope

ढाल स्थलरूप के प्रमुख अंग हैं जो पहाड़ी तथा घाटी के मध्य उपरिमुखी तथा अधोमुखी झुकाव होते हैं। इनका आकार अवतल Concave, उत्तल Convex, सरलरेखी Rectilinear, मुक्तपृष्ठ free face मातीकाव नुमा हो सकता है।

लक्षण- उत्तलता, अवतलता, मुक्त पृष्ठता व सरल रेखात्मकता।

वर्गीकरण- (I) उत्पत्ति के आधार पर (अ) विवर्तनिक Tectonic ढाल- भूगर्भिक हलचल के कारण धरातल में भ्रंशन व नमन से निर्मित ढाल - जैसे- कगार ढाल।

(ब) अपरदनात्मक Erosional ढाल- नदी अपरदन द्वारा गार्ज, कैनियन, हिम अपरदन द्वारा U आकार की घाटी, सागर अपरदन द्वारा क्लिफ।

(स) संचयनात्मक Accumulation:- नदी निक्षेपण द्वारा जलोढ़ पंख तथा जलोढ़ शंकु, वायु द्वारा निक्षेपित बालुका स्तूप, हिमानी निक्षेप द्वारा हिमोढ़, ज्वालामुखी निस्सृत लावा निक्षेप द्वारा शंकु।

(II) निर्माण की अवस्था के आधार पर - (अ) प्राथमिक- विवर्तनिक घटनाओं व अपरदन द्वारा निर्मित ढाल। जैसे V, U, क्लिफ।

(ब) द्वितीयक ढाल:- प्राथमिक ढालों पर अपक्षय तथा अपरदन द्वारा निर्मित।

(III) तत्वों के आधार पर (अ) उत्तल ढाल- पर्वतीय ढाल के सबसे ऊपर वाले भाग में निर्मित।

(ब) मुक्त पृष्ठ ढाल - दीवाल सदृश्य तीव्र ढाल

(स) सरलरेखी ढाल - मुक्त पृष्ठ तथा अवतल ढाल के मध्य एक सीधी रेखा वाला ढाल होता है जिसे सरल रेखी ढाल कहते हैं।

(द) अवतल ढाल- पर्वतीय ढाल के सबसे निचले भाग में।

(IV) ढाल के कोणों के आधार पर- (अ) चौरस ढाल - 0°-1°

(ब) मंद ढाल - 1°-3° (स) सामान्य मंद ढाल - 3°-8°

(द) तीव्र ढलुवां ढाल - 8°-15° (य) सामान्य तीव्र ढाल - 15°-30°

(र) अति तीव्र ढाल - 30°-90°

ढालों की समस्याएं — अनाच्छादन प्रक्रम, क्रमण्डता, ऊँचाई से स्थानान्तरण होकर आने वाले पदार्थ (संरचना से उत्पन्न निर्माण) (1) ढाल विकास उपगमन- ढाल के ऐतिहासिक विकास पर बल दिया जाता है।

(2) प्रक्रम का उपगमन- विभिन्न प्रकार की चट्टानों वाले विभिन्न जलवायु प्रदेशों में अपक्षय, अपरदन आदि द्वारा उत्पन्न ढालों का अध्ययन किया जाता है।

वृहत संचलन (Mass-movement)

अपक्षय से प्राप्त शैल अवशिष्टों के पहाड़ी ढाल के सहारे, सामूहिक रूप से गतिशील होने की प्रक्रिया को वृहत संचलन कहते हैं। इसमें दो क्रियाएं सम्मिलित हैं- (1) चट्टानों से पदार्थों का अलग होना (2) पदार्थों का ढाल के सहारे गतिशील होना।

वर्गीकरण (1) पात Fall:- तीव्र पहाड़ी ढाल से बड़े शिलाखंडों सहित अपक्षयित शैल पदार्थों का त्वरित व तत्काल नीचे गिरना जैसे- शैलपात, मलवापात, भूमिपात।

(2) स्खलन (Slide):- अवपतन, शैलस्खलन, भूस्खलन, मलवा स्खलन

(3) लुढ़कना Topples:- शैल, मलवा व भूमि लुढ़काव।

(4) वाह Flow:- असंयुक्त पदार्थों का नीचे की ओर खिसकना जैसे- शैलवाह, मृदा वाह, मलवा वाह, भूमि वाह आदि।

(5) सर्पण Creep:- ढालों के सहारे पदार्थों के अतिमंद गति से नीचे की ओर संचलन, जैसे- मृदासर्पण, शैलसर्पण।

(6) भूमिस्खलन Land slides:- अपशिष्ट शैल के स्थानांतरण के सभी प्रकारों मृदा एवं हिम सहित सामूहिक रूप से भूमि स्खलन कहते हैं। इसके फलस्वरूप (अ) क्षतिचिन्ह (Scar)- पदार्थ के स्खलन होने वाले स्थान पर निर्मित गड्ढा, (ब) वेदिकाएँ, (स) विसर्पिका विस्तार, (द) कैनियन का पीछे हटना आदि स्थलाकृतियां बनती हैं।

वृहद्मान संचलन के कारक- (अ) स्थिरता शक्ति बढ़ाने वाले कारक-

(I) पार्श्विक आश्रय का समाप्त होना- (1) प्राकृतिक कारक- अपक्षय, अपरदन व स्थानान्तरण से।

(2) मानव जनित कारक - निर्माण कार्यों से।

(II) अधिभार (1) प्राकृतिक- जल, हिम, टालस व वनस्पतिभार।

(2) मानव जनित - निर्माण व जनपथ कार्य।

(III) क्षणिक दबाव कारक- भूदाब, भूकम्प, वृक्षलहराना, कम्पन, विस्फोट।

(IV) नीचे स्थित आश्रय की समाप्ति - प्राकृतिक व मानव जनित कारणों से।

(ब) पदार्थों की स्थिरता शक्ति कम करने वाले कारक-

(1) अपक्षय व अन्य भौतिक रासायनिक अभिक्रियाएं-

(2) जल के कारण परिवर्तन (3) संरचना में परिवर्तन

(4) जैविक कारक - जीव जंतु व जड़ सड़ना।

अपरदन (EROSION)

- अपरदन शब्द लैटिन भाषा के "Erodere" शब्द से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'कुतरना'।
- अपरदन एक गतिशील क्रिया (Dynamic Process) है। अतएव अपरदन एक ऐसी क्रिया है जो भूपटल से चट्टानी मलवा को अलग करके उन्हें अपने साथ परिवहन द्वारा दूर तक ले जाते हैं।
- **अपरदन के कारक**- (Agents of Erosion) अपरदन में भाग लेने वाली शक्तियों को अपरदन के कारक कहते हैं। ये निम्न हैं-
  - i. बहता हुआ जल
  - ii. पवन
  - iii. हिमानी
  - iv. भूमिगत जल
  - v. परिहिमानी
  - vi. सागरीय लहरें, ज्वारभाटा
- **अपरदन के प्रकार**- (Types of Erosion) अपरदन की क्रिया निम्न रूपों में होती है-
  1. अपघर्षण (Abrasion or Corrasion)
  2. सन्निघर्षण (Attrition)
  3. जलगति क्रिया (Hydrolic Action)
  4. घोलीकरण (Solution)
  5. अपवाहन (उड़ाना) (Deflation)

अपरदन चक्र की संकल्पना (Concept of Cycle of Erosion)

- पृथ्वी की कोई भी स्थलाकृति का निर्माण तथा विकास एक चक्रीय पद्धति से होता है।
- सर्वप्रथम 1785 ई० में स्काटिश भूविज्ञानवेत्ता 'जेम्स हटन' ने भूविज्ञान के क्षेत्र में चक्रीय पद्धति का अवलोकन किया था। इन्होंने पृथ्वी के इतिहास की चक्रीय प्रकृति की संकल्पना की थी।
- जेम्स हटन महोदय ने एकरूपतावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
- "न तो आदि का कोई लक्षण है और न अन्त का कोई भविष्य"- जेम्स हटन।

डेविस का भौगोलिक चक्र (Geographical Cycle of Davis)

- सर्वप्रथम डेविस महोदय ने 1899 में भौगोलिक चक्र की संकल्पना का प्रतिपादन किया।
- डेविस महोदय ने भौगोलिक चक्र की परिभाषा इस प्रकार दी- "भौगोलिक चक्र समय की वह अवधि है, जिसके अन्तर्गत उत्थित भूखण्ड अपरदन के प्रक्रम द्वारा प्रभावित होकर एक आकृतिविहीन समतल मैदान में बदल जाता है।"
- डेविस ने यह प्रतिपादित किया कि 'स्थलरूप संरचना, प्रक्रम तथा समय का प्रतिफल होता है।' "A lands cape is a function of structure, Process and time."
- इन तीन कारकों (संरचना, प्रक्रम तथा समय या अवस्था) को "डेविस के त्रिकूट" (Trio of Davis) के नाम से जाना जाता है।
- इनके सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य स्थलरूपों का जननिक एवं क्रमबद्ध वर्णन करना था।
- डेविस का अपरदन चक्र स्थलखण्ड में उत्थान के साथ प्रारम्भ होता है। उत्थान की अवधि छोटी होती है तथा जब तक उत्थान चलता रहता है, अपरदन प्रारम्भ नहीं होता, परन्तु जैसे ही उत्थान पूर्ण हो जाता है अपरदन प्रारम्भ हो जाता है तथा यह चक्र के अन्त तक चलता रहता है।
- डेविस महोदय ने अपने अपरदन चक्र की तीन अवस्थाएं- युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और जीर्णावस्था बताई है।

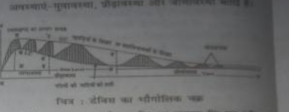

चित्र : डेविस का भौगोलिक चक्र

- इन्होंने अपरदन चक्र की समाप्ति पर बताया कि यह उत्थित भूखण्ड एक आकृतिविहीन समप्राय मैदान जिसे पेनीप्लेन (Peneplain) कहा, में बदल जाता है और जो अवशेष दिखाई पड़ते हैं (पहाड़ी सदृश्य) उन्हें "मोनाडनाक" कहा।
- मोनाडनाक का नामकरण संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूहैम्पशायर की मोनाडनाक पहाड़ी के नाम पर किया गया है।

पेंक की संकल्पना (Penck)

- पेंक का मॉडल 'मार्फोलॉजिकल सिस्टम' या 'मार्फोलॉजिकल एनालिसिस' के नाम से जाना जाता है।
- इनके मॉडल का मुख्य उद्देश्य बहिर्जात प्रक्रमों तथा आकृतिक विशेषताओं के आधार पर धरातलीय संचलन (Crustal movement) के विकास एवं उसके कारणों की कल्पना करना था।
- पेंक ने तरूण, प्रौढ़ तथा जीर्ण अवस्थाओं के स्थान पर क्रमशः आफस्तीगेंडे इंटविकलुंग (बढ़ती दर से विकास), ग्लीखफार्मिंग इंटविकलुंग (समान दर के विकास), एवं आफस्तीजेंडे इंटविकलुंग (घटती दर के विकास), का प्रयास किया है।
- पेंक के अनुसार "स्थलरूप संरचना, प्रक्रम तथा अवस्था का प्रतिफल न होकर उत्थान की दर तथा अपरदन एवं पदार्थों के विस्थापन की दर के बीच अनुपात का प्रतिफल होता है।" स्थलरूपों के विकास में समय की कोई भूमिका नहीं होती है।
- स्थलरूपों का विकास (अपरदन चक्र) प्राइमारम्फ में उत्थान के साथ प्रारम्भ होता है। प्राइमारम्फ का उत्थान विभिन्न दरों से सम्पन्न होता है।

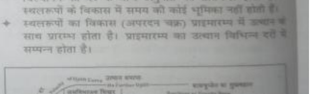

चित्र : पेंक के स्थल रूप विकास मॉडल का आरेखीय प्रदर्शन

- प्रारम्भ में उत्थान मन्द गति से होता है तथा इस उत्थान की अवधि लम्बी होती है। इसके बाद त्वरित गति से तथा बाद में समान दर से उत्थान होता है। अन्त में घटती दर से उत्थान होता है और अन्ततः उत्थान समाप्त हो जाता है।
- इन्होंने प्रथम दशा (उत्थान की शुरुआत) को "प्राइमारम्फ" और अंतिम दशा को इन्ड्रम्फ कहा है। अर्थात् इन्ड्रम्फ आकृति विहीन

भूकम्पः– भूकम्प का शाब्दिक अर्थ है 'पृथ्वी का कंपन'। साधारण अर्थ में पृथ्वी के भूपटल में तीव्र गति से कंपन पैदा हो जाता है तो उसे भूकंप कहते हैं। ए.एन. स्ट्राहलर के शब्दों में –'' भूकम्प, भूपटल का कंपन है जो धरातल की समस्थिति में क्षणिक अव्यवस्था होने पर उत्पन्न होता है''।

जिस स्थान पर भूकंप की घटना प्रारंभ होती है उसे भूकंपमूल कहते हैं। भूकंपमूल के ठीक ऊपर धरातल का वह केन्द्र जहाँ भूकंपीय लहरों का सर्वप्रथम अनुभव होता है, उसे अधिकेन्द्र कहते हैं। भूकंप की उत्पत्ति से पृथ्वी में लहरें उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें भूकंपीय लहरें कहते हैं। भूकंपीय लहरों का अंकन सीसमोग्राफ से किया जाता है जो अधिकेंन्द्र पर लगा होता है। भूकंप की तीव्रता रिक्टर पैमाने पर मापी जाती है।

भूकंप का कारणः– भूकंप का एक मात्र कारण धरातल पर भूसंतुलन में अव्यवस्था का उत्पन्न होना है। इस अव्यवस्था को उत्पन्न करने के लिए ज्वालामुखी क्रिया, भूपटल भ्रंश, शैलों का टूटना, भूसंतुलन में अव्यवस्था, जलीय भार, भूपटल में सिकुड़न, प्लेट विवर्तनिकी, गैस का फैलाव, सुनामी, पृथ्वी का घूर्णन तथा बम विस्फोट व परीक्षण आदि कारक उत्तरदायी होते हैं।

भूकंप के प्रकारः–

(क) उत्पत्ति में भाग लेने वाले कारकों के आधार पर–**(अ)** प्राकृतिक भूकंप–

(1) ज्वालामुखी भूकंप–जो भूकंप ज्वालामुखी उद्‌गार के कारण उत्पन्न होते हैं। जैसे– क्राकाटोआ, एटना ।

(2) भ्रंशमूलक भूकंप– जो भूकंप भूपटल में भ्रंशन के कारण उत्पन्न होते हैं। जैसे– कैलिफोर्निया भूकंप।

(3) संतुलन मूलक भूकंप– जो भूकंप भूसंतुलन में अव्यवस्था उत्पन्न होने के कारण उत्पन्न होते हैं। जैसे–हिन्दुकोह।

(4) प्लुटॉनिक भूकंप– जो भूकंप अत्यधिक गहराई में उत्पन्न होते हैं।

(ब) अप्राकृतिक भूकंप– सुरंग, खदान, बाँध, रेलपथ व बम परीक्षण आदि से उत्पन्न भूकंप।

(ख) भूकंप मूल की स्थिति के आधार पर –

(1) साधारण भूकंप–जिनका उत्पत्ति केन्द्र धरातल से 0–50 कि.मी. की गहराई तक होता है।

(2) मध्यवर्ती भूकंप– जिनका उत्पत्ति केन्द्र धरातल से 50–250 कि.मी. की गहराई तक होता है।
(3)अत्यधिक गहरे भूकंप– जिनका उत्पत्ति केन्द्र धरातल से 240–672 कि.मी. की गहराई तक होता है।

भूकंप का वितरणः– विश्व के अधिकतर भूकंप नवीन वलित पर्वत, महाद्वीप व सागर मिलन क्षेत्र, भूपटल भ्रंश व ज्वालामुखी क्षेत्रों में आते हैं। सामान्यतः पृथ्वी पर भूकंप की निम्न लिखित पेटियाँ पाईं जाती हैं।

1. प्रशांत महासागर तटीय पेटी– यह पेटी प्रशांत महासागर के दोनों तटीय भागों में विस्तृत है। यहाँ विश्व के 63 प्रतिशत भूकंप आते हैं। इसकी एक शाखा उत्तर व दक्षिण अमरीका के सहारे अलास्का से चिली तक फैली है तथा दूसरी शाखा एशिया के पूर्वी तटीय भागों को सम्मिलित करते हुए क्यूराइल द्वीप, जापान द्वीप व फिलीपीन द्वीप को मिलाती हुई न्यूजीलैण्ड तक जाती है।

2. मध्य महाद्वीपीय पेटी– इसे भूमध्य सागरीय पेटी भी कहते हैं। यहाँ विश्व के 21 प्रतिशत भूकंप आते हैं। इसमें यूरोप के आल्पस, एशिया के हिमालय पर्वत, वर्मा की पहाड़ियाँ तथा भूमध्य सागर के भूकंप क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। भारत का भूकंप क्षेत्र इसी पेटी में सम्मिलित किया जाता है। भारत के हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में अत्यधिक, मैदानी क्षेत्र में सामान्य तथा प्रायद्वीपीय क्षेत्र में भूकंप का न्यूनतम प्रभाव रहता है।

3. मध्य अटलांटिक पेटी–यह पेटी आइसलैण्ड से प्रारंभ होकर अटलांटिक महासागर के मध्यवर्ती उभार के सहारे बोबेट द्वीप तक विस्तृत है।

ज्वालामुखी (Volcanos)

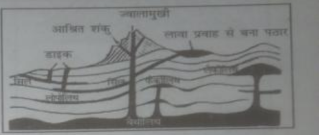

ज्वालामुखी वह विवर या छिद्र है जिससे लावा, राख, गैस व जलवाष्प का उद्गार होता है। ज्वालामुखी क्रिया के अंतर्गत पृथ्वी के आंतरिक भाग में मैग्मा व गैस के उत्पन्न होने से लेकर भू-पटल के नीचे व ऊपर लावा के प्रकट होने तथा शीतल व ठोस होने की समस्त प्रक्रियाएं शामिल की जाती हैं। लावा का यह उद्गार केंद्रीय विस्फोटक के रूप में या दरारी उद्भेदन के रूप में हो सकता है। मैग्मा में सिलिका की मात्रा अधिक होने पर ज्वालामुखी में विस्फोटक उद्गार देखे जाते हैं जबकि सिलिका की मात्रा कम रहने पर उद्गार प्रायः शांत रहता है। वर्तमान समय में मैग्मा तथा लावा एवं आग्नेय शैलों का वर्गीकरण **रासायनिक व खनिज संघटन के आधार पर** किया जाता है। खनिजों को हल्के रंग व गहरे रंग की दो कोटियों में विभक्त किया जाता है। हल्के रंग के खनिजों को फेल्सिक एवं गहरे रंग के खनिजों को मैफिक कहते हैं। 'फेल्सिक' समूह में सिलिका प्रधान खनिज क्वार्ट्ज तथा फेल्सपार प्रमुखता से होते हैं जबकि 'मैफिक' समूह में मैग्नेशियम व लौह तत्व की अधिकता वाले खनिज पायरॉक्सीस, एम्फीबोल्स तथा ऑल्वीन की प्रधानता होती है। फेल्सिक व मैफिक के मध्यस्थ गुणों वाले खनिजों को 'अल्ट्रामैफिक' कहा जाता है। इसमें सिलिकन व अल्युमिनियम की मात्रा अधिक होती है। फेल्सिक, अल्ट्रामैफिक व मैफिक के अंतर्गत ग्रेनाइट, डायोराइट व गैब्रो क्रमशः अंतर्जात लावा के एवं रायोलाइट, एंडेसाइट व बैसाल्ट क्रमशः बहिर्जात लावा के उदाहरण हैं।

ज्वालामुखी लावा के जमाव से निर्मित **आंतरिक स्थलरूपों** में **बैथोलिथ**, किसी भी प्रकार की चट्टानों में मैग्मा का गुम्बदनुमा जमाव है। धीरे-धीरे ठंडा होने के कारण इसके रवे (कणों का आकार) बड़े होते हैं तथा यह ग्रेनाइट प्रकार का होता है। यह अपेक्षाकृत अधिक गहरे भागों में देखा जाता है। अपेक्षाकृत कम गहराई पर अवसादी चट्टानों में मैग्मा के अलग-अलग प्रकार से ठंडा होने की प्रक्रिया में कई प्रकार के स्थल रूप देखे जाते हैं इनमें **लैकोलिथ** उत्तल ढाल वाला एवं **लोपोलिथ** अवतल बेसिन में लावा जमाव है। **फैकोलिथ** मोड़दार पर्वतों के अभिनतियों व अपनतियों में अभ्यांतरिक लावा जमाव है। इसी प्रकार **सिल** व **डाइक** क्रमशः लावा के क्षैतिज व लम्बवत जमाव है। सिल की पतली परत को **शीट** एवं डाइक के छोटे स्वरूप को **स्टॉक** कहते हैं।

ज्वालामुखी के **विस्फोटक उद्गार** से निर्मित होने वाली स्थलाकृतियों में बाह्य भागों में जहां विभिन्न प्रकार के ज्वालामुखी शंकुओं का निर्माण होता है। क्रेटर व काल्डेरा जैसे धंसे हुए स्थलरूप ज्वालामुखी शंकुओं के ऊपर बनते हैं। ज्वालामुखी लावा के **उद्गार की घटती तीव्रता** के आधार पर ज्वालामुखी शंकुओं को पीलियन तुल्य, वल्कैनो तुल्य, स्ट्राम्बोली तुल्य व हवाईयन तुल्य प्रकारों में बांटा जाता है। इनमें **पीलियन तुल्य** ज्वालामुखी सबसे अधिक विनाशकारी होते हैं। सिलिका की अधिक मात्रा के कारण मैगमा अत्यधिक अम्लीय व चिपचिपा होता है। इसमें प्रत्येक अगला उद्गार पिछले उद्गार से निर्मित ज्वालामुखी शंकु को प्रायः तोड़ते हुए होता है। उदाहरण के लिए मार्टीनिक द्वीप में माउंट पीली, सुमात्रा व जावा के निकट क्राकाटाओ तथा फिलीपींस में माउंट ताल। **वल्कैनो तुल्य** ज्वालामुखी में अम्लीय से लेकर क्षारीय तक प्रत्येक प्रकार के मैग्मा का उद्गार होता है। गैसों के अत्यधिक निष्कासन के कारण प्रायः फूलगोभी के आकार में ज्वालामुखी मेघ दूर तक छा जाते हैं। विसुवियस प्रकार (प्लिनियन प्रकार) के ज्वालामुखी उद्गार को भी इसी वर्ग में रखा जाता है। **स्ट्राम्बोली तुल्य** ज्वालामुखी में अम्ल की मात्रा कुछ कम रहती है तथा यदि गैसों के प्रवाह मार्ग में यदि रुकावट न हो तो सामान्यतः इसमें विस्फोटक उद्गार नहीं होते। **हवाईयन** तुल्य ज्वालामुखी का उद्गार अत्यंत शांत होता है, क्योंकि लावा तरल व क्षारीय होता है जिससे यह दूर तक फैलकर जमा हो जाता है। ज्वालामुखी शंकु कम ऊंचाई का व दूर तक फैला हुआ होता है।

ज्वालामुखी के विस्फोटक उद्गार से निर्मित ज्वालामुखी शंकुओं की आकृतियों में पर्याप्त भिन्नता देखी जाती है।

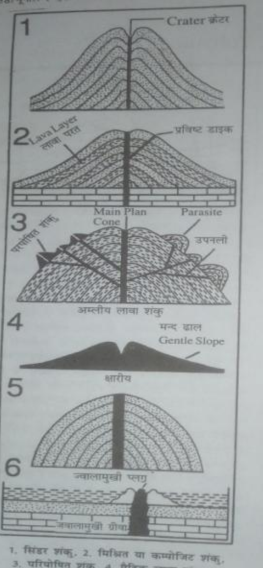

1. सिंडर शंकु, 2. मिश्रित या कम्पोजिट शंकु, 3. परिपोषित शंकु, 4. पैठिक लावा शंकु, 5. एसिड लावा शंकु, 6. ज्वालामुखी प्लग।

1. **सिंडर या राख शंकु:** इस प्रकार के शंकु प्रायः कम ऊंचाई के होते हैं एवं इनके निर्माण में मुख्यतः ज्वालामुखी राख व विखंडित पदार्थों का योगदान रहता है। तरल पदार्थों का योगदान प्रायः नहीं होता है। इस तरह के शंकु का ढाल अवतल होता है तथा क्रेटर अधिक चौड़ा रहता है। उदाहरण के लिए मेक्सिको का जोरल्लो पर्वत, सान-सल्वाडोर में इजाल्को पर्वत, फिलीपींस के लुजोन द्वीप में कैमेग्विन पर्वत, मैक्सिको में पैराक्युटिन पर्वत, ग्वाटमाला में वल्कैनो डि-फ्यूगो पर्वत।
2. **लावा शंकु:** इस प्रकार के शंकु के निर्माण में अम्लीय से लेकर क्षारीय तक किसी भी प्रकार के तरल मैग्मा के उद्गार की भूमिका होती है। लावा शंकु को पुनः अम्लीय या क्षारीय प्रकार में बांटा जा सकता है।
   (i) **अम्लीय लावा शंकु:** इस प्रकार के शंकु का निर्माण उस समय होता है जब ज्वालामुखी लावा में सिलिका की मात्रा अधिक हो जिससे वह अधिक चिपचिपा व लसदार हो जाता है तथा तीव्र विस्फोटक उद्गार के साथ भूपटल के बाहर प्रकट होता है। ऐसा ज्वालामुखी शंकु अधिक ऊंचाई व कम क्षेत्रीय विस्तार वाला होता है। इसी वर्ग में पीलियन तुल्य, वल्कैनो तुल्य व स्ट्राम्बोली तुल्य ज्वालामुखियों को रखा जा सकता है।
   (ii) **क्षारीय या पैठिक लावा शंकु:** जब ज्वालामुखी लावा क्षारीय हो अर्थात् उसमें सिलिका की मात्रा कम हो तो वह हल्का व पतला हो जाता है तथा दूर तक फैलकर ठंडा होता है जिससे कम ऊंचाई व अधिक क्षेत्रीय विस्तार लिए हुए ज्वालामुखी शंकु का निर्माण होता है। हवाईयन प्रकार के ज्वालामुखी को इस वर्ग में रखा जाता है, जैसे- हवाई द्वीप का मोनालोआ ज्वालामुखी। क्षारीय लावा शंकु को 'शील्ड शंकु' भी कहा जाता है।
3. **मिश्रित ज्वालामुखी शंकु:** जब ज्वालामुखी के केन्द्रीय उद्गार से अम्लीय से लेकर क्षारीय हर प्रकार के लावा का उद्गार हो तथा साथ ही सिंडर व राख भी ज्वालामुखी उद्गार में शामिल हो तो अत्यधिक विस्तृत सुडौल व ऊंचे ज्वालामुखी शंकु का निर्माण हो जाता है। इसमें तरल लावा सिंडर या विखंडित पदार्थों के संयोजक का कार्य करता है। जापान का फ्यूजीयामा, फिलीपींस का मेयान, सं. रा.अमेरिका का रेनियर, हुड, शस्ता आदि मिश्रित प्रकार के ज्वालामुखियों के उदाहरण हैं।
4. **परिपोषित या आश्रित शंकु:** जब ज्वालामुखी का विस्तार अधिक हो जाता है तो उनकी मुख्य नालिका से कभी-कभी फटन के कारण उप-नालिकाएं या शाखाएं निकल जाती हैं। इससे ज्वालामुखी शंकु के ढाल पर एक अन्य ज्वालामुखी शंकु निर्मित हो जाता है। इसे ही परिपोषित शंकु कहा जाता है। सं. रा. अमेरिका में माउंट शस्तिना, माउंट शस्ता का ही एक परिपोषित शंकु है।

- **लावा डॉट, ज्वालामुखी ग्रीवा व डायट्रेम**

इस प्रकार के स्थलरूप उस समय निर्मित होते हैं जब ज्वालामुखी उद्गार से निकलने वाला लावा अत्यधिक अम्लीय व सिलिकायुक्त हो, तो इस तरह की स्थिति में लावा की एक कठोर पट्टी ज्वालामुखी नालिका एवं विवर (क्रेटर) में जमा हो जाती है। यदि ज्वालामुखी शंकु का विवर ज्वालामुखी लावा से भर जाए तो इसे 'ज्वालामुखी प्लग' या 'लावा डॉट' कहा जाता है। नालिका में जमा हुई लावा पट्टी 'ज्वालामुखी ग्रीवा' कहलाती है। इन दोनों स्थलों को समेकित रूप में 'डायट्रेम' कहा जाता है। सं.रा.अमेरिका के न्यू मेक्सिको में 'शिप रॉक' डायट्रेम का उदाहरण है जबकि इसी प्रांत में 'ब्लैक हिल्स' व 'डेविल टावर' ज्वालामुखी ग्रीवा के उदाहरण हैं। ये सभी स्थल रूप ज्वालामुखी के शांत होने के क्रम में निर्मित होते हैं।

ज्वालामुखी के विस्फोटक उद्गार से शंकु के ऊपर कीपाकार गर्त धंसे हुए भाग के उदाहरण हैं। ये कई प्रकार के हो सकते हैं:

(a) **क्रेटर:** यह ज्वालामुखी शंकु के ऊपर सामान्यतः मिलने वाले कीपाकार गर्तनुमा आकृति है। इसमें यदि जल का भराव हो जाए तो क्रेटर झील बन जाती है, जैसे- महाराष्ट्र के बुलढाना जिले में लोनार झील। कभी-कभी एक मुख्य क्रेटर में कई छोटे-छोटे क्रेटरों का निर्माण हो जाता है। ऐसा उस समय होता है जबकि अगला उद्गार पिछले उद्गार की तुलना में कम तीव्रता का हो। इस तरह के क्रेटर को घोंसलादार क्रेटर (Nested Crator) कहते हैं। उदाहरण के लिए फिलीपींस के माउंट ताल में तीन छोटे क्रेटर मिलते हैं।

(b) **काल्डेरा:** यह क्रेटर का ही अधिक विस्तृत रूप है। यह क्रेटर में धंसाव अथवा विस्फोटक उद्गार से निर्मित स्थलरूप माना जाता है। इनमें से प्रथम मत का प्रतिपादन सं.रा.अमेरिका के भू-गार्भिक सर्वेक्षण विभाग ने किया है। उनके अनुसार क्रेटर के धंसाव से उसका आकार बड़ा हो जाता है व काल्डेरा निर्मित होते हैं। इस संदर्भ में वे जापान के 'आसो' क्रेटर, सं. रा.अमेरिका का 'क्रेटर लेक' एवं हवाई द्वीप के काल्डेरा का उदाहरण देते हैं।

डेली महोदय ने धंसाव से निर्मित बड़े क्रेटर को ज्वालामुखी गर्त का नाम दिया है। उनके अनुसार जब क्रेटर में पुनः भयंकर विस्फोट होता है तो शंकु के विखंडित पदार्थ दूर-दूर तक फैल जाते हैं तो शंकु के विखंडित पदार्थ दूर-दूर तक फैल जाते हैं

व क्रेटर का आकार बड़ा हो जाता है जिसे काल्डेरा कहते हैं। इसीलिए सामान्य रूप से जहां ऐसी आकृति मिलती है वहां से सैकड़ों किमी. की दूरी तक उसके विखंडित पदार्थ मिलते हैं। क्राकाटाओ, विसुवियस व अलास्का के कटमई पर्वत क्षेत्र में ऐसा देखा जाता है। द्वितीय मत को अधिक समर्थन प्राप्त है। अत्यधिक विस्तृत काल्डेरा को 'सुपर काल्डेरा' कहा जाता है। इण्डोनेशिया के सुमात्रा द्वीप के उत्तर पश्चिम में लेक टोबा इसका उदाहरण है।

- ज्वालामुखी के **दरारी उद्भेदन** से लावा पठार व लावा मैदान निर्मित होते हैं। धुआरे व गीजर भी ज्वालामुखी क्रियाओं से ही संबंधित हैं। ज्वालामुखी के दरारी उद्भेदन से बैसाल्टिक भाग शान्त रूप से प्रवाहित होकर धरातल के ऊपर मोटी परत के रूप में जमा हो जाता है। इन परतों को लावा पठार या ट्रैप कहते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण भारत का 'दक्कन ट्रैप' है। सं.रा.अमेरिका का कोलम्बिया-स्नैक पठार, ब्राजील का पराना पठार, दक्षिण अफ्रीका का ड्रैकेन्सबर्ग पठार तथा ग्वाटेमाला का वलकैनो-डि-फ्यूगो इसके कुछ अन्य उदाहरण हैं।
- **उष्णोत्स या गीजर** (Gyser) गर्म जल के ऐसे स्रोत हैं जहाँ से समय-समय पर गर्म जल की फुहारें निकलती रहती हैं। गर्म जल के झरनों से यह भिन्न है क्योंकि इसका ज्वालामुखी क्रिया से अनिवार्य संबंध होता है। गीजर का सबसे अच्छा उदाहरण सं. रा.अमेरिका के येलोस्टोन नेशनल पार्क में ओल्ड फेथफुल गीजर व एक्सेल्सियर गीजर है। आइसलैंड का ग्रांड गीजर भी विख्यात है।
- **धुआँरे** (Fumaroles) ज्वालामुखी क्रिया के अंतिम अवस्था के प्रतीक हैं। इनसे गैस व जलवाष्प निकला करते हैं। गंधक युक्त धुआरों को सोलफतारा कहा जाता है। अलास्का (सं.रा. अमेरिका) के कटमई पर्वत को 'हजारों धुआँरों की घाटी' (A valley of ten thousand smokes) कहा जाता है। ईरान का कोह सुल्तान धुआँरा तथा न्यूजीलैंड की प्लेन्टी खाड़ी में स्थित व्हाइट द्वीप का धुआँरा भी प्रसिद्ध है।

सक्रियता के आधार पर ज्वालामुखियों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है:-

1. **सक्रिय (Active) ज्वालामुखी** : वैसे ज्वालामुखी जिनसे लावा, गैस तथा विखण्डित पदार्थ सदैव निकला करते हैं। वर्तमान समय में उनकी संख्या लगभग 500 है। इनमें सिसली के उत्तर में लिपारी द्वीप का स्ट्रॉम्बोली (भूमध्यसागर का प्रकाश स्तंभ), इटली का एटना, इक्वेडोर का कोटोपैक्सी (विश्व का सबसे ऊँचा सक्रिय ज्वालामुखी), अंटार्कटिका का एकमात्र सक्रिय ज्वालामुखी माउंट एरबस तथा अंडमान-निकोबार के बैरेन द्वीप में सक्रिय ज्वालामुखी प्रमुख हैं।

2. **सुषुप्त (Dormant) ज्वालामुखी** : अर्थात् वैसे ज्वालामुखी जो वर्षों से सक्रिय नहीं है पर कभी भी विस्फोट कर सकते हैं। इनमें इटली का विसुवियस, जापान का फ्यूजीयामा, इंडोनेशिया का क्राकाताओ तथा अंडमान-निकोबार के नारकोंडम द्वीप (दिसंबर 2004 के सुनामी के बाद अब इसमें सक्रियता के लक्षण दिखाई पड़े हैं) के ज्वालामुखी उल्लेखनीय हैं।
3. **मृत (Dead or Extinct) ज्वालामुखी** : इसके अंतर्गत वैसे ज्वालामुखी शामिल किए जाते हैं जिनमें हजारों वर्षों से कोई उद्भेदन नहीं हुआ है तथा भविष्य में भी इसकी कोई संभावना नहीं है। अफ्रीका के पूर्वी भाग में स्थित केनिया व किलिमंजारो, इक्वेडोर का चिम्बाराजो, म्यांमार का पोपा, ईरान का देमबन्द व कोहसुल्तान और एंडीज पर्वतश्रेणी का एकांकागुआ इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

विश्व के कुछ प्रमुख ज्वालामुखी

नाम	देश
आजोसडेल सेलेडो	अर्जेंटीना-चिली
कोटोपैक्सी	इक्वेडोर
पोपोकैटेपिटल	मैक्सिको
मोनालोआ	हवाईद्वीप
माउंट कैमरून	कैमरून (अफ्रीका)
माउंट इरेबस	रॉस (अंटार्कटिका)
माउंट एटना	सिसली (इटली)
माउंट पीली	मार्टिनीक द्वीप
हेक्ला व लाकी	आइसलैंड
विसुवियस	नेपल्स की खाड़ी (इटली)
स्ट्रॉम्बोली	लिपारी द्वीप (भूमध्यसागर)
क्राकाटाओ	इंडोनेशिया
कटमई	अलास्का (U.S.A.)
माउंट रेनियर	U.S.A.
माउंट शस्ता	U.S.A.
चिम्बारेजो	इक्वेडोर
फ्यूजीयामा	जापान
माउंट ताल	फिलीपींस
माउंट पिनाटुबो	फिलीपींस
देमबंद	ईरान
कोहसुल्तान	ईरान
माउंट पोपा	म्यांमार (बर्मा)
किलिमंजारो	तंजानिया
मेयाना	फिलीपींस

ज्वालामुखी का विश्व वितरण : प्लेट विवर्तनिकी के आधार पर ज्वालामुखी क्षेत्रों की व्याख्या वर्तमान में सबसे मान्य संकल्पना है। इसके अनुसार 80% ज्वालामुखी विनाशात्मक प्लेट किनारों पर, 15% रचनात्मक प्लेट किनारों पर तथा शेष प्लेट के आन्तरिक भागों में पाए जाते हैं।

ज्वालामुखियों का मेखलाबद्ध वितरण इस प्रकार है-

1. **परिप्रशान्त महासागरीय मेखला (Circum Pacific Belt)** : यहाँ विनाशात्मक प्लेट किनारों के सहारे ज्वालामुखी मिलते हैं। विश्व के ज्वालामुखियों का लगभग 2/3 भाग प्रशान्त महासागर के दोनों तटीय भागों, द्वीप चापों तथा समुद्री द्वीपों के सहारे पाया जाता है। इसे 'प्रशान्त महासागर का अग्निवलय' (Fire ring of the Pacific Ocean) कहते हैं। यह पेटी अंटार्कटिका के माउन्ट इरेबस से शुरू होकर दक्षिण अमेरिका के एंडीज पर्वतमाला व उत्तर अमेरिका के रॉकी पर्वतमाला का अनुसरण करते हुए अलास्का, पूर्वी रूस, जापान, फिलीपींस आदि द्वीपों से होते हुए 'मध्य महाद्वीपीय पेटी' में मिल जाती है।
2. **मध्य महाद्वीपीय पेटी (Mid-continental Belt)** : इस मेखला के अधिकांश ज्वालामुखी विनाशात्मक प्लेट किनारों के सहारे मिलते हैं क्योंकि यहाँ यूरेशियन प्लेट तथा अफ्रीकन व इंडियन प्लेट का अभिसरण होता है। इसकी एक शाखा अफ्रीका की भू-भ्रंश घाटी एवं दूसरी शाखा स्पेन व इटली होते हुए काकेशस व हिमालय की ओर आगे बढ़ते हुए दक्षिण की ओर मुड़कर प्रशांत महासागरीय पेटी से मिल जाती है। यह मेखला मुख्य रूप से अल्पाइन-हिमालय पर्वत श्रृंखला के साथ चलती है। भूमध्यसागर के ज्वालामुखी भी इसी पेटी के अन्तर्गत आते हैं। स्ट्रॉम्बोली, विसुवियस व एटना भूमध्यसागर के प्रसिद्ध ज्वालामुखी हैं। इसी पेटी में ईरान का देमबन्द, कोह सुल्तान, आर्मेनिया का अरारात ज्वालामुखी भी शामिल हैं। यूरोप के अधिकांश ज्वालामुखी इस पेटी में मीडियन मास एवं अफ्रीका के ज्वालामुखी भू-भ्रंश घाटियों के सहारे मिलते हैं। पश्चिम अफ्रीका का एकमात्र जागृत ज्वालामुखी कैमरून पर्वत है।
3. **मध्य अटलांटिक मेखला या मध्य महासागरीय कटक:** ये रचनात्मक प्लेट किनारों के सहारे मिलते हैं जहाँ-जहाँ पर दो प्लेटों के अपसरण के कारण भ्रंश का निर्माण होता है एवं क्रस्ट के नीचे एस्थेनोस्फेयर से पेरिडोटाइट तथा बैसाल्टिक मैग्मा ऊपर उठते हैं। इनके शीतलन से नवीन क्रस्ट का निर्माण होता

रहता है। कटक के पास नवीनतम लावा होता है एवं कटक से बढ़ती दूरी के साथ लावा भी प्राचीन होता जाता है। हेकला व लॉकी इस प्रदेश में आइसलैंड के प्रमुख ज्वालामुखी हैं। एंटलीज दक्षिणी अटलांटिक महासागर के एवं एजोर्स व सेंट हेलेना उत्तरी अटलांटिक महासागर के प्रमुख ज्वालामुखी हैं।

4. **अन्तरा-प्लेटीय ज्वालामुखी** : महासागरीय या महाद्वीपीय प्लेट के आंतरिक भागों में भी ज्वालामुखी क्रियाएँ देखी गई हैं जिन्हें माइक्रो प्लेट गतिविधि एवं गर्म स्थल (Hot Plums) की संकल्पना द्वारा समझा जा सकता है। प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत द्वारा इनका स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो सका है। हवाई द्वीप से लेकर कमचटका तक के ज्वालामुखी, पूर्वी अफ्रीका के भू-भ्रंश घाटी के ज्वालामुखी एवं ज्वालामुखी के दरारी उद्भेदन से बने कोलम्बिया-स्नैक पठार, पराना पठार, दक्कन ट्रैप व ड्रैकेन्सबर्ग पठार अंतरा प्लेटीय ज्वालामुखी क्रियाओं के अन्तर्गत शामिल किए जा सकते हैं।

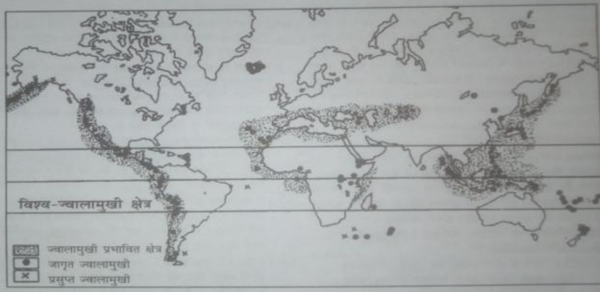

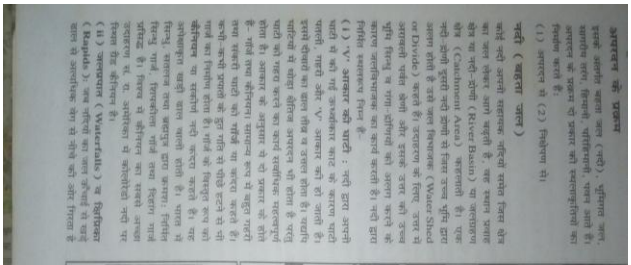

अपरदन के प्रक्रम

इसके अंतर्गत बहता जल (नदी), भूमिगत जल, सागरीय तरंग, हिमानी, परिहिमानी, पवन आते हैं। अपरदन के प्रक्रम दो प्रकार की स्थलाकृतियों का निर्माण करते हैं:

(1) अपरदन से (2) निक्षेपण से।

नदी (बहता जल)

कोई नदी अपनी सहायक नदियों समेत जिस क्षेत्र का जल लेकर आगे बढ़ती है, वह स्थान प्रवाह क्षेत्र या नदी-द्रोणी (River Basin) या जलग्रहण क्षेत्र (Catchment Area) कहलाती है। एक नदी-द्रोणी दूसरी नदी द्रोणी से जिस उच्च भूमि द्वारा अलग होती है उसे जल विभाजक (Water Shed or Divide) कहते हैं। उदाहरण के लिए उत्तर में अरावली पर्वत श्रेणी और इसके उत्तर की उच्च भूमि सिन्धु व गंगा-द्रोणियों को अलग करने के कारण जलविभाजक का कार्य करती है। नदी द्वारा निर्मित स्थलरूप निम्न है-

(i) 'V' आकार की घाटी : नदी द्वारा अपनी घाटी में की गई ऊर्ध्वाकार काट के कारण घाटी पतली, गहरी और 'V' आकार की हो जाती है। इसमें दीवारों का ढाल तीव्र व उत्तल होता है। यद्यपि घाटियों में थोड़ा क्षैतिज अपरदन भी होता है परंतु घाटी को गहरा करने का कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। आकार के अनुसार ये दो प्रकार के होते हैं- गॉर्ज तथा कैनियन। सामान्य रूप में बहुत गहरी तथा संकरी घाटी को गॉर्ज या कंदरा कहते हैं। कभी-कभी प्रपातों के द्रुत गति से पीछे हटने से भी गार्ज का निर्माण होता है। गॉर्ज के विस्तृत रूप को **कैनियन** या संकीर्ण नदी कंदरा कहते हैं। यह अपेक्षाकृत खड़ी ढाल वाली होती है। भारत में सिन्धु, सतलज तथा ब्रह्मपुत्र द्वारा क्रमशः निर्मित सिन्धु गार्ज, शिपकीला गॉर्ज तथा दिहांग गार्ज प्रसिद्ध हैं। विश्व में कैनियन का सबसे अच्छा उदाहरण सं. रा. अमेरिका में कोलोरेडो नदी पर स्थित ग्रैंड कैनियन है।

(ii) जलप्रपात (Waterfalls) व क्षिप्रिका (Rapids): जब नदियों का जल ऊँचाई से खड़े ढाल से अत्यधिक वेग से नीचे की ओर गिरता है

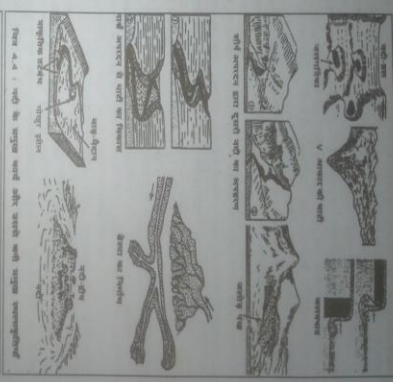

चित्र 4.4 : नदी के प्रमुख कार्य और उससे बनी प्रमुख स्थलाकृतियाँ

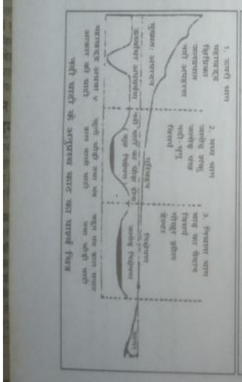

नदी घाटी के अनुप्रस्थ काट का पार्श्व चित्र

नदी, हिमानी, सागरीय लहरों अथवा पवन के कार्य जितना तेज व महत्वपूर्ण नहीं होता। भूमिगत जल के प्रभाव के लिए कुछ जरूरी शर्तें निम्नलिखित हैं :

1. चूना-पत्थर या डोलोमाइट की चट्टानें
2. पर्याप्त स्थलाकृतिक उच्चावच
3. पर्याप्त वर्षा क्षेत्र
4. घुलनशील चट्टानों में संधियों का विकास।

भूमिगत जल द्वारा निर्मित स्थलरूप निम्न हैं-

(i) लैपीज (Lapies) : घुलनक्रिया के फलस्वरूप ऊपरी सतह अत्यधिक ऊबड़-खाबड़ तथा पतली शिखरिकाओं वाली हो जाती है। इस तरह की स्थलाकृति को क्लिंट या लैपीज कहते हैं।

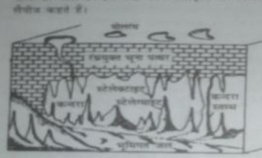

(ii) घोलरंध्र (Sink Holes) : जल की घुलन क्रिया के कारण सतह पर अनेक छोटे-छोटे छिद्रों का विकास हो जाता है, जिसे घोल रंध्र कहते हैं। गहरे घोल रंध्रों को विलयन रंध्र कहते हैं। विस्तृत आकार वाले घोलरंध्रों को डोलाइन कहते हैं जो कई घोलरंध्रों के मिलने से बनता है। जब कई डोलाइन मिलकर एक बड़ा आकार धारण कर लेते हैं तो उसे 'युवाला' की संज्ञा दी जाती है। पोलिए या पोल्जे युवाला से बड़ी स्थलाकृति है। विश्व में सबसे बड़ा पोल्जे बाल्कन क्षेत्र का 'लिवनो' पोल्जे है।

(iii) कन्दरा (Caverns) : भूमिगत जल के अपरदन द्वारा निर्मित स्थलाकृतियों में सबसे महत्वपूर्ण स्थलाकृति कन्दरा है। इसका निर्माण घुलन क्रिया तथा अपघर्षण द्वारा होता है। ये ऊपरी सतह के नीचे एक रिक्त स्थान होती है और इसके अन्दर निरन्तर जल का प्रवाह होता रहता है। कन्दराओं में जल के टपकने से कन्दरा की छत के सहारे चूने का जमाव लटकता रहता है जिसे स्टैलेक्टाइट कहते हैं। कन्दरा के फर्श पर चूने के जमाव से निर्मित स्तंभ स्टैलेग्माइट कहलाता है।

इन दोनों के मिल जाने से कन्दरा स्तम्भ (Cave Pillars) का निर्माण होता है।

(iv) अंधी घाटी (Blind Valley) : कार्स्ट प्रदेशों में नदियों का जल विलयन रंध्रों से नीचे की ओर रिसने लगता है एवं नदियों की आगे की घाटी शुष्क रह जाती है, जिसे शुष्क घाटी कहते हैं जबकि घाटी के पिछले भाग को अंधी घाटी कहा जाता है।

सागरीय जल (Sea Water)

सागरीय जल का कार्य कई कारकों द्वारा संपन्न होता है। इसमें सागरीय लहर, धाराएँ, ज्वारीय तरंग तथा सुनामी शामिल हैं। इन सबमें सागरीय लहरों का कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सागरीय जल द्वारा निर्मित स्थलरूप निम्न हैं-

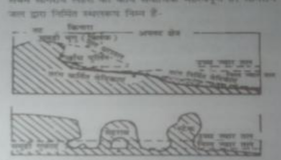

(i) तटीय कगार या भृगु (Coastal Cliffs) : जब समुद्र तट बिल्कुल खड़ा हो तो उसे क्लिफ या भृगु कहते हैं।

(ii) तटीय कन्दरा (Coastal Caves) : तटीय चट्टानों के बीच में जहाँ संधियाँ, भ्रंश व कमजोर चट्टान मिलते हैं, वहाँ सागरीय तरंगें तेजी से अपरदन करती हैं, जिससे वहाँ तटीय कन्दरा का निर्माण होता है।

(iii) स्टैक (Stack) : कन्दराओं के मिलने से बने प्राकृतिक मेहराबों की प्रकृति अस्थायी होती है। इस मेहराब के ध्वस्त होने के बाद चट्टान का जो भाग समुद्र जल में स्तंभ के समान शेष रह जाता है, स्टैक कहलाता है।

(iv) पुलीन (Beach) : तटीय भागों में भाटा जलस्तर और समुद्री तट रेखा के मध्य बालू, बजरी, गोलाश्म आदि पदार्थों के अस्थायी जमाव से बनी स्थलाकृति को पुलिन कहते हैं।

(v) रोधिका (Bars) : तरंगें तथा धाराओं द्वारा निक्षेप के कारण निर्मित कटक या बांध को रोधिका कहते हैं। जब रोधिकाओं का निर्माण तट से दूर एवं तट के प्राय: समानान्तर होती है तो उन्हें अपतट रोधिका कहते हैं। जब किसी द्वीप के चारों ओर अपरदित पदार्थों के जमाव से रोधिका का निर्माण होता है तो वह लूप रोधिका कहलाती है।

(vi) संयोजक रोधिका (connecting Bars) : दो सुदूरवर्ती तटों अथवा किसी द्वीप को तटों से जोड़नेवाली रोधिका को संयोजक रोधिका कहते हैं। जब इसके दोनों छोर स्थल भाग से मिल जाते हैं तो उनके द्वारा घिरे हुए क्षेत्र में समुद्री खारे जल वाली लैगून झील (Lagoon Lake) का निर्माण हो जाता है। भारत में इसका उदाहरण उड़ीसा की चिल्का झील, आंध्र प्रदेश की पुलीकट झील तथा केरल की बेम्बानद झील है। तट से किसी द्वीप को मिलाने वाली रोधिका टोम्बोलो (Tombolo) कहलाती है।

(viii) तट रेखा (Coast Line) : समुद्र तट और समुद्री किनारे के मध्य की सीमा रेखा को तटरेखा कहते हैं। यह रेखा समुद्र की ओर समुद्र तट का निर्माण करती है। समुद्री तरंगों द्वारा तट रेखा में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। समुद्री तट पर अधिक अवरोधी चट्टानों से अंतरीप (cape) तथा कम अवरोधी चट्टानों से खाड़ियाँ (gulf and Bays) का निर्माण होता है। तट रेखाओं के निम्न मुख्य प्रकार हैं:

(a) फियर्ड तट : किसी हिमानीकृत उच्चभूमि के सागरीय जल के नीचे अंशत: धँस जाने से फियर्ड तट का निर्माण होता है। इनके किनारे, खड़ी दीवार के समान होते हैं। नार्वे का तट फियर्ड तट का सुन्दर उदाहरण है।

(b) रिया तट : नदियों द्वारा अपरदित उच्चभूमि के धँस जाने से रिया तट का निर्माण होता है। ये 'V' आकार की घाटी तथा ढलुए किनारे वाली होती हैं। इनकी गहराई समुद्र की ओर क्रमश: बढ़ती जाती है। प्रायद्वीपीय भारत के पश्चिमी तट का उत्तरी भाग रिया तट का अच्छा उदाहरण है।

(c) डॉल्मेशियन तट : समानान्तर पर्वतीय कटकों वाले तटों के धँसाव से डॉल्मेशियन तट का निर्माण होता है। युगोस्लाविया का डॉल्मेशियन तट इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

(d) हैफा तट या निमग्न निम्नभूमि का तट : सागरीय तटीय भाग में किसी निम्न भूमि के डूब जाने से निर्मित तट को निमग्न निम्न भूमि का तट कहते हैं। यह तट कटा-फटा नहीं होता तथा इस पर घाटियों का अभाव पाया जाता है। इस पर रोधिकाओं की समानान्तर श्रृंखला मिलती है जिससे सागरीय जल घिरकर लैगून झीलों का निर्माण करता है। यूरोप का बाल्टिक तट हैफा तट का अच्छा उदाहरण है।

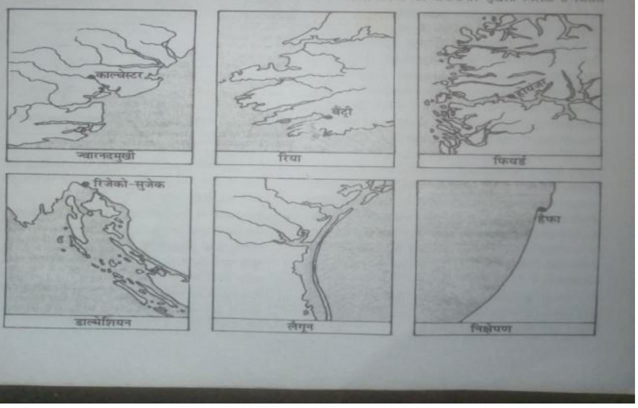

(e) निर्गत समुद्र तट : स्थलखंड के ऊपर उठने या समुद्री जलस्तर के नीचे गिरने से निर्गत समुद्र तट का निर्माण होता है। इस प्रकार के तट पर स्पिट, लैगून, पुलिन, क्लिफ तथा मेहराब मिलते हैं। भारत में गुजरात का काठियावाड़ तट निर्गत समुद्र तट का अच्छा उदाहरण है।

हिमानी (Glaciers)

पर्वतीय तथा ध्रुवीय क्षेत्रों की वह रेखा जिसके ऊपर वर्षभर हिम का आवरण रहता है तथा बर्फ पूर्णतया कभी नहीं पिघलती, हिमरेखा कहलाती है। हिमरेखा में ऋतु के अनुरूप परिवर्तन भी देखे जाते हैं। भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर हिमरेखा की ऊँचाई क्रमश: घटती जाती है एवं ध्रुवीय क्षेत्रों में यह प्राय: समुद्रतल के बराबर ही पाई जाती है। भूमध्यरेखा पर हिमरेखा की ऊँचाई 6000 मीटर है जबकि हिमालय पर यह 5500 मीटर है।

हिमानी या हिमनद धीमी गति से बहनेवाली हिम या बर्फ की नदी है। ऊँचे पर्वतों में बनने वाली हिमानियाँ लम्बी तथा तंग होती है क्योंकि वे किसी पूर्ववर्ती नदी की घाटी में बनती है। इन्हें घाटी हिमानी (valley Glacier) कहते हैं। भारतीय हिमनदों में सबसे बड़ी काराकोरम श्रेणी में अवस्थित **सियाचिन** हिमनद है जो 72 किमी. लम्बी है। जब हिमावरण आसपास की निम्नभूमि पर फैल जाता है तो वह महाद्वीपीय हिमानी कहलाता है। बर्फ से ढँकी ऊँची पर्वत चोटियाँ, जिससे हिमनद निकलती है, हिमछत्रक (Ice Cap) कहलाती है। पठार पर जमी बर्फ की चट्टानें हिमचादर (Ice Sheet) कहलाती हैं जबकि पानी में तैर रही बर्फ की सिल्ली हिमशैल (Iceberg) कहलाती है।

हिमानी या हिमनद द्वारा धरातलीय उच्चावच में परिवर्तन कार्य मुख्यत: दो रूपों में सम्पन्न होता है- उत्पाटन व अपघर्षण। हिमानी द्वारा निर्मित स्थलरूप निम्न हैं-

i) 'U' आकार की घाटी : पहाड़ों पर पहले से मौजूद नदी घाटी में हिमानी के लंबवत अपरदन से 'U' आकार की घाटी का निर्माण होता है।

ii) निलम्बित या लटकती घाटी (Hanging Valley) : जब किसी मुख्य हिमनद से कोई सहायक हिमनद आकर मिलती है तो सहायक हिमनद की घाटी मुख्य हिमनद घाटी पर लटकती सी प्रतीत होती है जिसे लटकती घाटी कहते हैं।

iii) हिम गह्वर या सर्क (Cirques) : जब किसी पर्वतीय भाग से हिमानियाँ हटती हैं तो वहाँ आरामकुर्सी की तरह की आकृति बनती है जिसे सर्क कहते हैं।

iv) एरीट (Aretes) : किसी पर्वत के दोनों ओर सर्क के विकसित होने से मध्य का भाग अपरदित होकर नुकीला हो जाता है जिसे एरीट कहते हैं।

v) गिरि श्रृंग या हॉर्न (Horns) : जब किसी पर्वतीय भाग पर चारों ओर से सर्क बनने लगते है तो बीच का नुकीला शीर्ष हॉर्न कहलाता है। स्विट्जरलैंड का मैटरहॉर्न विश्व प्रसिद्ध है।

vi) नुनाटक (Nunataks) : किसी पर्वतीय भाग में हिमाच्छादन के बावजूद चट्टानों के निकले हुए ऊँचे टीले नुनाटक कहलाते हैं।

vii) भेड़ शिला (Roche Moutonne) : हिमानी के मार्ग में जब कोई बड़ी ऊँची चट्टानी आकृति अवरोधक के रूप में आती है तो हिमानी उसके ऊपर से बहने लगती है तथा चढ़ते समय अपघर्षण के कारण इसे मंद व चिकना कर देती है; किंतु विपरीत दिशा की ढाल, जिसपर हिमानी उतरती है, को तोड़-फोड़ कर अधिक तीव्र, ऊबड़-खाबड़, ढाल बना देती है। ऐसे चट्टानी टीले दूर से देखने पर भेड़ के पीठ के समान दिखते हैं। अत: इन्हें भेड़शिला कहते हैं।

viii) हिमोढ़ (Moraines) : हिमानियों द्वारा अपरदित व परिवहित पदार्थों का निक्षेप हिमोढ़ कहलाता है। यह प्राय: उन्हीं स्थानों पर होता है जहाँ हिमानियाँ पिघलकर जल में परिवर्तित होने लगती है।

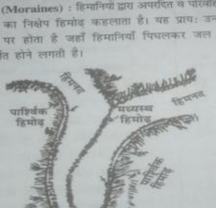

हिमानी में हिमाढ़ों की स्थिति

ix) ड्रमलिन (Drumlins) : जब हिमानियों के तलस्थ हिमोढ़ का थोड़े-थोड़े समय पर गुंबदाकार टीलों के रूप में जमाव होता है तो उससे बनी स्थलाकृतियों को ड्रमलिन कहा जाता है। इसका आकार उल्टे हुए नौका के समान होता है।

(x) अपक्षेप मैदान (Outwash Plain) : हिमानी के पिघलने पर बने हिमजल के प्रवाहित होने से हिमोढ़ एक चादर की भाँति काफी बड़े क्षेत्र पर विस्तृत हो जाते हैं। इन्हीं मैदानों को अपक्षेप मैदान कहते हैं। इस मैदान में धाराओं द्वारा निर्मित शिलाखंडों की लहरों वाली टेढ़ी-मेढ़ी कगारें एस्कर (Esker) कहलाती है। केम, केटल व हम्मक अवक्षेप मैदान के अन्य प्रमुख स्थल रूप है।

- **परिहिमानी**: ये ध्रुवीय व उपध्रुवीय प्रदेशों में सक्रिय हिमानी के द्वारा होता है। इनमें तुषार-अपक्षय (कांजेलीफ्रैक्शन), मृदासर्पण (सोलफ्लक्शन) व मृदाउत्क्षेपण जैसी क्रियाएं देखी जाती हैं। पिंगो, पल्सा, थर्मोकार्स्ट, हम्मक (गिरिका), तुषार क्लिफ, तुषार बहुभुज व अंतर्वलन इसके द्वारा निर्मित प्रमुख स्थलाकृतियां है। पेल्टियर ने परिहिमानी चक्र का प्रतिपादन किया है।

पवन (Wind)

शुष्क व अर्द्धशुष्क मरूस्थलीय भागों में पवन ही अपरदन का सबसे शक्तिशाली साधन है क्योंकि यहाँ वर्षा नाम मात्र की होती है और आर्द्रता तथा वनस्पति के अभाव में मिट्टी के कण ढीले रहते हैं। यहाँ पवन को यांत्रिक अपक्षय से बहुत मदद मिलती है। ऊँचाई पर पवन द्वारा कटाव कम और भूतल के निकट अधिक होता है क्योंकि बालू के कण अधिक ऊँचे नहीं उठ पाते। इसका अपरदनात्मक कार्य मुख्यत: भौतिक ही होता है जो अपघर्षण, सन्निघर्षण तथा अपवहन के रूप में किया जाता है। पवन द्वारा निर्मित स्थलरूप निम्न हैं-

i) वात गर्त या अपवाह बेसिन (Blow Out) : पवन के अपवहन कार्य द्वारा अर्द्धशुष्क मरूस्थलीय क्षेत्रों में धरातल पर बिछी रेत को उड़ाए जाने के कारण छोटे-छोटे गर्तों का निर्माण हो जाता है, जो क्रमश: बढ़कर बड़ा आकार धारण कर लेते हैं। इन्हीं गर्तों को वात गर्त कहा जाता है।

ii) छत्रक शैल या गारा (Mushroom Rock or Gara) : यह पवन के अपघर्षण से बनी वह स्थलाकृति है जो कुकुरमुत्ते जैसी लगती है। चट्टानों के निचले भागों में अधिक कटाव होने के कारण ऐसी आकृति बनती है।

iii) ज्यूगेन (Zeugen) : यह दावातनुमा आकृति है जिसका निर्माण वहाँ होता है जहाँ मुलायम और कड़ी चट्टानों की परतें क्षैतिज अवस्था में होती हैं। चट्टान की दरारों में ओस भरने और रात में तापमान कम होने से मुलायम चट्टानों का अपरदन होने लगता है। कठोर चट्टानी भाग टोपी की भांति नजर आता है। इन्हें ही ज्यूगेन कहते हैं।